सजना सिरीज—७ उपन्यास

बीच का रास्ता

लेखक—श्री नरसिंहराम शुक्ल

प्रकाशक

मनोरञ्जन पुस्तकमाला

जार्जटाउन, इलाहाबाद

पहली बेर मूल्य १)

प्रकाशक की ओर से—

बीच का रास्ता श्री नरसिंह राम शुक्ल लिखित पन्द्रहवाँ उपन्यास है जो सजनी सिरीज के सातवें पुष्प के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसका नायक रत्नाकर विद्वान एवम् शिष्ट युवक है और नायिका सरोजिनी समाज की एक आदर्श युवती। इन दोनों के बीच आ पड़ती है मिस रोज़ जो अपनी मादक जवानी के कारण हर एक के आकर्षण की वस्तु बन जाती है। यद्यपि उसका धर्म और रहन-सहन बिल्कुल भिन्न है तथापि उसके हृदय में रत्नाकर के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। परिस्थितियाँ रोज़, रत्नाकर और सरोजिनी को कैसे कैसे चक्कर में डालती है और अन्त में उसका परिणाम क्या होता है इसे जानने के लिए आपको इस अनूठी पुस्तक को पूरी पढ़नी पड़ेगी।

प्रकाशक

जुलाई, ४५

बीचका रास्ता

——:o:——

"तुम्हारी हाथ में कौन सी पोथी है बहन !"

"यह पोथी ओथी नहीं है ! मासिक पत्रिका है"

"मासिक पत्रिका, क्या होती है, बहन !"

'तूँ इतना भी नहीं जानती ! क्या बिल्कुल ही नहीं पढ़ी लिखी है !'

'अगर पढ़ी लिखी होती तो क्या आज यहाँ पड़ी रहती" उसने भारी सा मन कर लिया और फिर उसकी आखों की कोर में छोटी-छोटी मोतियाँ बन गई। उसकी सारी आकृति दयार्द्र हो उठी।

हाथ में मासिक पत्रिका लिए युवती सोचने लगी 'तो क्या यह सभंव है कि ऐसी सुन्दर सलोनी लड़की निरक्षर हो। काश यह पढ़ी लिखी होती तो समाज के युवकों में इसके लिए कितनी प्रतिस्पर्धा मच जाती! फिर 'वह प्रकट होकर बोली। तेरी शादी तो हो चुकी है न ! ससुराल गई थी या नही !"

लड़की बोली ! 'ससुराल कौन ले जाता। वे पढ़ी लिखी लड़की चाहते हैं। पिता ने झूठ बोलकर शादी रचा दी। उन्होंने शादी के बाद खत भेजा, मैं जबाब न दे पाई। दूसरे से दिलवा दिया। तब से वे मुझसे रूठे बैठे हैं।'

युवती कुछ क्षण तक सोचती पत्रिका के पत्रों में डूब गई। लड़की बोली जोर-जोर से पढ़ो तो मैं भी सुनूँ जरा दिल ही बहल जायगा !

तेरा दिल इससे न बहलेगा। तुझे तो "एक था राजा"एक थी रानी"......चाहिए !"

"और तुम्हें चाहिए 'एक था शहर का बाबू'......और इसमें उसी 'बाबू' की कहानी है न ! अब मैं जरूर सुनूँगी। जरा सुनें शहर के उस बाबू ने क्या-क्या गुल खिलाये ! 'कहती हुई वह युवती के बिल्कुल पास चली गई। बोली सुना दो रानी बीबी मैं भी सुनूँ शहरी लोग किस तरह से प्रेम करते हैं। मैं भी उसी तरह से अपने उनको रिझाऊँगी !"

युवती उसकी आँखों की याचना की अवहेलना न कर सकी और वह पढ़ने लगी वह कहानी जोर-जोर से——

'मुझसे विवाह करोगी किरण ?'

रवि की बात मेरे हृदय पर लहरा उठी। शहर के बाहर गोमती के किनारे रेत पर हम बैठे थे। अरुणई सुरमई बादलों के संग अठखेलियाँ करती हुई थिरक रही थी। उसका प्रतिबिम्ब सरिता के शान्त जल में अत्यन्त मनोहर लग रहा था। मन्द-मन्द समीर के झोंके, गोमती की शीतलता चुराकर एक अपूर्व मस्ती बिखेरते बह रहे थे। पास ही कहीं कोयल कूक रही थी। वातावरण अत्यन्त सुखद और सुन्दर था।

रवि ने मेरे सम्मुख प्रेम का पवित्र और आदर्श प्रस्ताव रक्खा था। उस प्रेम का, जिसने हम दो अपरिचितों को मधुमय बसन्त के एक सुनहले मास में इतने पास पहुँचा दिया था।

मैंने रवि की आँखो में झाँका, वहाँ आशा और उत्सुकता का सम्मिलित नृत्य हो रहा था लगा जैसे उसकी वह दृष्टि मेरी आँखो में समाकर मन की सारी बातें पढ़ लेगी।

मैं रवि की ओर आकर्षित तो अवश्य थी, किन्तु उसके साथ विवाह की बात मेरे मन में कभी न उठी थी। रवि ने आज यह प्रस्ताव मेरे सम्मुख रख कर मेरे मस्तिष्क में उथल-पुथल मचा दी थी। वह साठ रुपये मासिक पर किसी शहर में असिसटेन्ट क्लर्क

था ! साठ रुपये मासिक ! दस-दस के छः काग़ज मेरी आँखों के सामने आये और गये। इन थोड़े रुपयों से हमारा रंगीला संसार कैसे चल पायेगा इसे मैं सोच भी न पाती थी।

मैं अत्यन्त सरलता पूर्वक 'हाँ कह सकती थी, और केवल यही एक शब्द कहकर मैं प्रेम और यौवन के साम्राज्य में रवि के साथ अपनी एक छोटी सी दुनियाँ बसा सकती थी। किन्तु मैंने तो कभी भी छोटी सी दुनियाँ बसाने का स्वप्न नहीं देखा था! मेरी काल्पनिक दुनियाँ तो बड़ी विस्तृत और असीम थी! वहाँ, बड़ी-बड़ी भव्य अट्टालिकायें, रोल्सरायस, सिनिमा-गृह और बड़े होटल आदि ही दिखाई पड़ते थे! मेरे चारों ओर सोने और चाँदी के ढेर रक्खे रहते थे अब आप ही बतायें इतनी बड़ी महत्वाकाँक्षा रखकर एक सामान्य क्लार्क की पत्नी बनना कैसे स्वीकार कर लेती ? आह! वह जीवन भर अपना सारा वेतन जोड़कर भी मेरी इच्छित वस्तुओं में से एक भी तो नहीं दे सकता था।

आकाश की अरुणाई मिटती जा रही थी। बादल धुँधले और काले होते जा रहे थे। दिन का धीरे-धीरे पटाक्षेप हो रहा था। उसके साथ ही जैसे रवि की व्यग्रता भी बढ़ती जा रही थी। वह अधिक देर चुप न रह सका। बोला तुमने कुछ कहा नहीं, किरण ?

रवि के साथ विवाह करने से मैं हिचकती थी किन्तु 'न' भी नहीं कर पाती थी। रवि का भोला और सुन्दर मुख मन में जैसे समा गया था। उसका निर्दोष प्रेम-व्यवहार जैसे रक्त में मिलकर सारे शरीर में दौड़ रहा था। रवि से सम्बन्ध टूटने की कल्पना करके ही हृदय को बड़ी व्यथा हो रही थी। कैसे 'न' कहती या 'हाँ' कहती समझ नहीं पा रही थी।

'किरण,' रवि अत्यन्त अधीर होकर बोला, 'कुछ तो कहो चाहे 'हाँ' या 'ना'। इस तरह चुप रहने से कैसे काम चलेगा !'

ठीक तो था, कब तक चुप रहती। उत्तर तो देना ही था। सुदूर आकाश पर झिलमिलाते हुये सन्ध्या के प्रथम तारा को एक टक देखती हुई मैं बोली, 'तुम्हारा वेतन केवल साठ रुपये मासिक है। भला इन थोड़े से रुपयों से हमारा निर्वाह कैसे हो सकेगा !'

'निर्वाह,' उसने कहा। उसका प्रफुलित मुख मलिन हो गया और स्वर में कम्पन हो आया। वह कहता गया, 'क्या एक छोटा-सा घर हम किराये पर नहीं ले सकते ? पेट भरने के लिये अन्न और तन ढाँकने के लिये वस्त्र नहीं खरीद सकते ? इतना तो शायद हम इन थोड़े से मुट्ठी भर रुपयों में कर ही सकते हैं। फिर इसके सिवा हमें चाहिये ही क्या ?'

मैं उसे कैसे बताती कि खाने पहनने के अलावा इस बीसवीं शताब्दी की दुनियाँ में सभ्यता पूर्वक रहने के लिये और भी कुछ चाहिये। पर मेरी सारी इच्छायें और आकाँक्षायें जैसे उसकी निर्मिमेष आकुल और उत्सुक दृष्टि में मिटती सी जान पड़ीं। नहीं-नहीं मुझे कठोर होना पड़ेगा। हृदय में उठती हुई दुर्बलता को को दूर हटाना पड़ेगा। रवि की रोमान्स पूर्ण इच्छाओं की उपेक्षा करनी पड़ेगी।

'रवि' मैंने गम्भीरता पूर्वक कहा, 'विवाह जीवन भर की समस्या है इतनी शीघ्रता से हल नहीं हो सकती। मुझे कुछ सोचने का समय दो,!'

'आह किरण,' उसके मुख पर निराशा की एक रेखा खिंच उठी। वह अत्यन्त आकुलता पूर्वक बोला, हमारे इस परस्पर पवित्र मिलन में धन को इतना अधिक महत्व न दो। आओ, थोड़ी देर के लिये मेरी इन आकुल बाहों के बीच आओ। तुम देखोगी कि हम लोग एक नई दुनियाँ में पहुँच गये हैं और जहाँ धन की कोई भी आवश्यकता नहीं है।'

'पागल न बनो रवि। यह न भूलो कि हमें उसी दुनियाँ में रहकर जीना मरना है जहाँ धन ही प्रथम वस्तु है। इस विषय में इतनी शीघ्रता न करो। सोचो और मुझे भी सोचने दो। मैं मानती हूँ कि तुम्हारा वेतन तुम्हारे लिये पर्याप्त है किन्तु हम दो के होते ही हमारा जीवन विपर्य्य हो जायगा। दाम्पत्य सुख की जगह दिन भर हाय-हाय ही हाथ आयेगा। मुझे क्षमा करो रवि क्यों कि इतनी जल्दी मैं तुम्हारे प्रस्ताव से सहमत नहीं हो सकती !'

'ओह,' वह अपने दोनों को हाथों को खोलकर वहीं रेत पर लेट गया जैसे शब्दों द्वारा वह अपनी निराशा प्रकट करने में असमर्थ हो। रजनी अपना काला आँचल लेकर धीरे-धीरे पृथ्वी की ओर उतरने लगी। दूर पुल पर कोई विरह गीत गाने लगा। चारो ओर जैसे खूब उदासी सी भर गई। थोड़ी देर बाद में मैं उठ खड़ी हुई और उससे चलने के लिये कहा। वह धीरे से उठा और चुपचाप मेरे साथ लड़खड़ाता हुआ चल पड़ा।

२

'दूसरे दिन शाम को जब मैं इंडिया काफी हाउस' पहुँची तो वहाँ काफी भीड़ थी। सारा हाल कोलाहल से पूर्ण था। मुझे जब कहीं कोई खाली कुर्सी न दिखाई दी तो निराश होकर मैं लौट पड़ी। मुझे जाते देख कर एक ब्वाय दौड़ता हुआ आया, —'मिस साहब !'' वह सलाम करता हुआ बोला—
''दो कुर्सियाँ उधर खाली हैं।''

एक कोने में एक गोल मेज के इर्द-गिर्द दो खाली कुर्सियाँ दिखाई पड़ीं। मैं जाकर एक कुर्सी पर बैठ गई। ब्वाय काफी दे गया मैं प्याला ओंठों से लगाकर रवि की बात पर सोचने लगी।

''क्या मैं यहाँ बैठ सकता हूँ'' मैंने दृष्टि उठा कर देखा —

अत्यन्त अपटूडेट व्यक्ति मेरे सम्मुख खड़ा हुआ कुर्सी पर बैठने की अनुमति मांग रहा था।

"अवश्य" मैंने कहा।

"धन्यवाद," अत्यन्त भद्रता पूर्वक कुर्सी खींचकर वह बैठ गया। ब्वाय काफी दे गया और वह धीरे-धीरे पीता हुआ चारों ओर देखने लगा।

मैंने सरसरी दृष्टि से उसे देखा। वह अत्यन्त कीमती आसमानी ऊनी सूट पहने था। अनामिका में एक सुन्दर हीरे की अँगूठी चमक रही थी और कलाई बहुमूल्य सुनहरी घड़ी से सुशोभित थी। उम्र करीब ३८ या ४० की थी किन्तु मुख भरा हुआ और स्वास्थ्य सुन्दर था।

करीब आधा प्याला समाप्त कर उसने अपनी दृष्टि मेरी ओर घुमाई और नम्रता पूर्वक बोला—"मेरे कारण तो आपको कोई असुविधा तो नहीं हुई ?"

"असुविधा" किंचित मुस्करा कर मैंने उत्तर दिया,—"कुछ भी तो नहीं।"

ब्वाय को पैसे चुकते कर मैं उठ खड़ी हुई। बाहर आने पर सर्द हवा का एक तेज झोंका आया और मेरे शरीर को छूता हुआ काफी हाउस में घुस गया। मैं सिहर उठी। सर उठा कर आसमान की ओर देखा। काले बादल लदे खड़े थे। मन काँप उठा। तभी एकाएक एक बूँद मेरी नाक पर गिरी, दूसरी गाल पर, तीसरी मत्थे पर, और फिर बड़ी तेजी से पानी की बड़ी-बड़ी बूँदे गिरने लगीं। सड़क पर भगदड़ मच गई। लोग इधर-उधर भाग कर छिपने लगे, किन्तु मेरी समझ में न आया कि मैं क्या करूँ? बौखलाई सी जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई।

"अरे आप तो बिलकुल भीग गई।" उस अपरिचित व्यक्ति ने हाथ पकड़ कर मुझे अन्दर खींच लिया।

अपरिचित होते हुये भी उसकी दृष्टि और स्वर में अपनत्व की इतनी अधिक मात्रा थी कि मैं उसकी उपेक्षा न कर सकी।

"सचमुच" हौले से मैं बोली फिर साड़ी के छोर को धीरे-धीरे निचोड़ने लगी।

"आपको अधिक देर तक इस दशा में रहना ठीक नहीं। ठंढ लग जाने का भय है।"

किंचित विकल स्वर में उसने कहा।

पर कपड़े बदलने का यहाँ क्या प्रबन्ध था? विवश दृष्टि से उसकी ओर देख कर मैं मुस्करा दी।

उसने जैसे मेरी विवशता जान ली हो. बोला—"अगर आपको कोई आपत्ति न हो, तो मैं आपको अपनी कार पर आपके घर तक छोड़ आऊँ!"

सामने एक बृहत्ताकार रोल्सरायल खड़ी थी।

मैं कुछ बोली नहीं किन्तु मन में थोड़ा सन्देह जाग उठा। न जाने क्यों यह अपरिचित व्यक्ति इतनी ही देर में मेरे लिये इतना उत्सुक हो उठा है? एक झिझक सी मन में व्याप्त हो गई।

यह झिझक जैसे उसने अनुभव की। अपनी जेब से एक विजिटिङ्ग कार्ड निकाल कर मुझे देता हुआ बोला—"आप झिझक रही हैं और यह स्वाभाविक है किन्तु मेरा परिचय पाकर, आशा है, आप मुझ पर विश्वास करेंगी और अपने को भावी कष्ट से बचा लेंगी।"

कार्ड पर लिखा था "ए० यन० श्रीवास्तव"

—बार-एट-ला—

"तो नगर का सुप्रसिद्ध बैरिस्टर मेरे सम्मुख खड़ा हुआ था।

अपने प्रति उसकी इतनी अधिक उत्सुकता देखकर मुझे थोड़ा गर्व का अनुभव हुआ। शिष्टाचार के अनुसार मैं अपने दोनों हाथ उसके प्रति जोड़ कर बोली—"आपका परिचय पाकर मैं अपने को अत्यन्त सौभाग्य-शालिनी समझती हूँ। अनजाने में हुये किसी भी अशिष्ट व्यवहार को, आशा है, आप ध्यान में न लावेंगे।" प्रत्युत्तर में उसने भी अपने हाथ जोड़ दिये।

"आप भी कैसी बातें करती हैं।" किंचित आग्रह-पूर्वक बोला—"आइये चलिये।"

मैं इनकार न कर सकी।

३

वह स्वयं ड्राइव कर रहा था। मैं उसकी बगल में बैठी थी।

"कहाँ चलूं ?"

मैंने अपना पता बताया। सामने दूर तक कार की रोशनी फैली थी और हमारी कार पानी की उन तेज बौछारों को चीरती हुई चली जा रही थी। क्लीनर विन्ड स्क्रीन को खूब तेजी से साफ कर रहा था। हवा के तेज झोंके रह-रह कर एक ओर से आते और हमारे अङ्गों को छूकर दूसरी ओर निकल जाते थे। मुझे बहुत जोर से ठंडक लग रही थी किन्तु मैं अपने को खूब संयत कर चुपचाप बैठी थी।

"क्या आप अपना नाम बताने की कृपा करेंगी ?" सामने देखते हुये उसने पूछा।

"किरण।"

"किरण ! बड़ा मधुर नाम है आपका ?"

मुझे अनुभव हुआ कि जैसे मेरे शरीर का सारा रक्त एका-एक मेरे कपोलों की ओर दौड़ पड़ा है।

कार मेरे मुहल्ले से गुजर रही थी। साधारण लोगों की बस्ती है। मेरा मकान आ गया और मैंने कार रोकने के लिये कहा। पानी की तेजी कम हो गई थी केवल झीनी-झीनी फुहारें पड़ रहीं थीं।

सड़क की बिजली के सिसकते प्रकाश में अपना छोटा सा मकान देख कर मुझे न जाने क्यों थोड़ी सी लज्जा मालूम हुई। इसी मकान को पहले देख कर मैं फूली न समाती थी किन्तु आज मन में यह भाव उठ रहे थे कि अगर अमरनाथ चले जाते तो मैं घर में घुसती। मेरी कल्पनिक आँखों के आगे उसकी विशाल अट्टालिका घूम रही थी।

उसने मेरे कहने पर कार वहीं रोक दी।

"कौन सा मकान है आपका ?"

अब मैं कैसे छुपाती। अपने मकान की ओर मैंने उँगली उठा दी।

"यहीं, जिसमें फाटक लगे हैं न ?"

"हाँ" और तब जैसे मेरे मन की सारी लज्जा एक दम से लुप्त हो गई। मैं कार से उतर पड़ी।

"सुनिये किरण देवी !" वह बोला—"मैं आपसे एक अनुरोध करूँगा, आशा है, आप इनकार न करेंगी !"

बिना कुछ उत्तर दिये मैं उसकी ओर उत्सुकता पूर्वक देखने लगी।

"कैपिटल में गान-विद-दी-विन्ड प्रसिद्ध 'अँग्रेजी' चित्र चल रहा है। अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो कल मेरे साथ चलें।"

एक अपरिचित कुँआरी लड़की से उनका ऐसा प्रस्ताव एक दम से कर बैठना अनुचित तो अवश्य था किन्तु मैं जाने क्यों

उसकी अवहेलना न कर सकी। कुछ क्षणों के संसर्ग से उसके स्वभाव को मैं जान चुकी थी मुझे विश्वास हो गया कि उसका चरित्र बुरा नहीं है। वह मुझसे मित्रता स्थापित करना चाहता था जैसा कि उसके व्यवहार से प्रतीत होता था और उस जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति की उपेक्षा करना सरल भी नहीं था।

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" मैंने मुस्करा कर उत्तर दिया।

"धन्यवाद," प्रसन्न होकर वह बोला—"अब आप शीघ्र कपड़े बदलें।

सम्मति सूचक सिर हिलाकर मैंने उसे नमस्ते किया और फिर घर की ओर चल पड़ी। द्वार पर मुड़ कर देखा यह तब भी मेरी ही ओर देख रहा था। उसने अपने हाथ की रुमाल हिलाई और तब क्षण भर में उसकी रोल्स रायल आँखों से ओझल हो गई।

❀ ❀ ❀

मेरे भींगे कपड़े देख कर माँ ने बड़बड़ाना प्रारम्भ किया किन्तु बिना कुछ उत्तर दिये मैं अपने कमरे में जाकर कपड़े बदलने लगी।

शृङ्गार मेज़ पर रवि की मुस्कराती हुई तस्वीर थी। मैं रवि को प्रेम करती थी किन्तु निर्धन रवि मेरी एक भी महात्वाकांक्षा पूरी करने में असमर्थ था और अमरनाथ? काश! वह अमरनाथ की ही भाँति धनी होता।

❀ ❀ ❀

एक ही सप्ताह में बैरिस्टर और हम में अत्यन्त घनिष्टता हो गई हम साथ काफी हाउस जाते, सिनिमा देखते और कभी-कभी ग्रीन होटेल में भोजन भी करते।

और रवि? वह मुझे उस सन्ध्या के बाद नहीं मिला और न मैंने

ही उसकी खोज ख़बर ली। एक दिन माँ ने पूछा—"रवि नहीं आया इधर ? क्या बात है ?" मुझे नहीं मालूम।" लापरवाही से मैंने उत्तर दिया। सुनकर माँ कुछ खिन्न सी हुई किन्तु कहा कुछ नहीं।

४

"और अधिक परेशान न होइये, यही साड़ी ठीक है।' अमरनाथ ने कहा। वह स्वयं भड़कीले वस्त्र पहनने का आदी नहीं था और शायद वह जान भी गया था कि इससे अच्छी साड़ियाँ मेरे पास नहीं है। मेरी वास्तविक स्थिति को वह पूर्ण रूप से समझ गया था किन्तु उसके व्यवहार में कभी कोई अन्तर न हुआ अनेक बार उसने मुझे बहुमूल्य और आकर्षक वस्तुएँ भेंट में दी, सुन्दर चमड़े का बटुआ, रूमाल, शृङ्गार दान, और छोटी सी सुनहली पेन्सिल इत्यादि जिनकी प्रशंसा मुझे करनी पड़ी !

मेरे हाथों में सफेद और पीले गुलाबों का एक गुलदस्ता देकर उसने चाहा कि मैं उसको अपने कपोलों से सटाकर खिड़की के पास खड़ी होऊँ। मैंने वैसाही किया।

क्षण भर वह मेरी ओर अपलक देखता रहा फिर गम्भीर होकर धीरे से बुदबुदाया, "अतीव सुन्दर !" उसके पश्चात अपने पाकेट कैमरा से मेरा वही पोज खींच लिया। फिर उसके साथ मैं उसके घर गई। उस रोज उसने मुझे निमन्त्रण दिया था। गोमती नदी के किनारे उसकी विशाल अट्टालिका राजमहल की भाँति खड़ी थी। अन्दर से रंगीन प्रकाश निकल अन्धकार में फैल कर खो गया था।

द्वार पर दो दरबान हाथ बाँधे खड़े हुये थे।

खोई सी अमरनाथ के पीछे-पीछे मैं चलती गई। मुझे लग

रहा था कि मैं उस दुनियाँ में आ गई हूँ जिसकी चाहना मैं बरसों से कर रही थी।

एक अत्यन्त सुन्दर सजे सजाये और साफ सुथरे गोल कमरे में पहुँच कर मेरा धैर्य्य छूट सा गया। रंग-बिरङ्गे प्रकाश से मेरी आँखें चौंधिया सी गई। मैंने अपनी आँखें बन्द करली। कल्पना की दुनियाँ मेरे चारों ओर बिखरी हुई थी। मैं अमरनाथ की ओर घूम पड़ी और अधखुली पलकों से उसकी ओर देखती हुई मुग्ध स्वर में बोली—"कितनी सुन्दर यह जगह है बिल्कुल वैसी ही जैसी मैं कल्पना किया करती थी।"

मैंने अपनी जीभ दाँतों तले दाब ली जैसे बेहोशी से होश में आ गई होऊँ। लाज के मारे सारा शरीर सुन्न सा हो गया। एक विचित्र सी चमक अमरनाथ की आँखों में कौंध गई वह कंपित स्वर में बोला—"किन्तु अभाव है किसी का।" वह मुझसे अत्यन्त सटा हुआ था। उसके हाथ काँप रहे थे जैसे मुझे चारों ओर से घेर लेना चाहते हों। अगर मैं एक पग आगे बढ़ जाती तो उसकी बाहों के अन्दर पहुंच जाती। केवल एक पग, और उसकी सारी दुनियाँ मेरी हो जाती।

"पापा ! पापा !!"

चकित होकर मैंने देखा दो सुन्दर लड़कियाँ अमरनाथ से लिपट गई। अमरनाथ ने प्रफुल्लित होकर दोनों को गोद में उठा लिया और उनका मुख चूमते हुए काह—"मेरी रानी बेटियों ने खाना खा लिया न ?

"हाँ पापा !" बड़ी लड़की ने कहा।

"हाँ पापा !" छोटी लड़की ने भी दुहराया।

आह्लादित होकर अमरनाथ ने उन्हें फिर चूम लिया।

यह जान कर कि अमरनाथ दो बच्चियों का पिता है मेरा मन

जाने कैसा हो गया। मैं खो सी गई। लगा जैसे मेरी आत्मा कहीं दूर, बहुत दूर, चली गई हो।

"किरण देवी," वह दोनों को अत्यन्त स्निग्ध दृष्टि से देखता हुआ बोला—"ये मेरी बच्चियाँ हैं। बड़ी कुसुम है छोटी पुष्पा जब छैः माह की थी तभी इन्होंने अपनी माँ को खो दिया ?"

कहते कहते अमरनाथ का गला भर आया और आँखों के किनारों में आँसुओं की लकीर बन गई। दोनों मुझे अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक देख रही थीं।

मातृहीना ! दोनों बालिकायें मातृहीना थीं। मेरे मन के किसी कोने से सहानुभूति का सागर उमड़ पड़ा। निर्मिमेष दृष्टि से उन्हे मैं देखने लगी। दोनों सुन्दर थीं और आँखों में, समाने सी लगी। पुष्पा को उसकी गोद से लेती हुई बोली, कौन देख भाल करता है इनकी ?"

"मेरी बूढ़ी माँ और इनकी आया पातू।"

'कुसुम पुष्पा ! कहाँ गई दोनों ?' कमरे के बाहर आ किसी ने आवाज दी।

"पापा, हमें छिपा दो!' कुसुम ने अमरनाथ के कन्धे में अपना मुख छिपाते हुये कहा।

अमरनाथ ने कुसुम को एक अलमारी के पीछे छिपा दिया। उसे छिपते देखकर पुष्पा ने कहा, 'पापा, मैं भी।' फिर मेरी गोद से उतर कर अपनी बहन की बग़ल में जा छिपी।

उनकी आया अन्दर आई। उसे आड़ से देखकर दोनों ताली पीटती हुई बोलीं, 'पातू, हमें नहीं पकड़ सकती-पातू हमें नहीं पकड़ सकती।

फिर वे वहाँ से निकलकर कमरे में इधर उधर दौड़ने लगीं

पातू एक टेबिल पकड़कर इस भाँति खड़ी हो गई ,जैसे सचमुच वह उन्हें पकड़ने में असमर्थ हो।

दौड़ती हुई कुसुम मेरे पास से निकली। मैंने उसे पकड़ लिया। अपनी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों से मुझे घूरता हुई वह बोली, 'तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे बाल इतने सुनहले कैसे हो गये ? मैं चाहती हूँ कि मेरे बाल भी इतने ही सुनहले हो जायें। मेरे पास एक गुड़िया है उसके बाल भी तुम्हारे ही जैसे हैं।'

'मेरा नाम किरण है।' उसका मुख चुम्बन कर मैं बोली, 'मुझे अपनी गुड़िया दिखाओ।'

'लेकिन तुम्हारे बाल उसके बालों से ज्यादा सुन्दर हैं।' पुष्पा भी आ गई। मुझे उन दोनों के साथ बातचीत करने में बड़ा सुख मिल रहा था। सुन्दर सजीव खिलौने सी मेरे सामने वे खड़ी थीं। निर्दोषिता और पवित्रता उनके भोले मुख पर नाच रही थी। एक इच्छा मन में जग उठी काश ! मैं सदैव इतनी ही बड़ी रहती।

किसी की फटी आवाज ने मुझे चौंका दिया, 'पातू, ये अभी यहीं हैं ? इनके आराम करने का समय अभी नहीं हुआ क्या ?

कमरे में सन्नाटा छा गया। पातू ने दोनों की अगुलियाँ पकड़ी और सर झुकाकर कमरे के बाहर चली गई।

श्वेत वस्त्र पहने, कठोर मुद्रावाली एक वृद्धा आकर हमारे सम्मुख खड़ी हो गई।

'मेरी माँ और ये हैं मेरी मित्र मिस किरण देवी !' अमरनाथ ने हमारा परिचय कराया।

'नमस्ते !' आदरपूर्वक मैंने अपने दोनों हाथ उनके प्रति जोड़ दिये।

'नमस्ते !'. उन्होंने थोड़ा मुंह बिचकाकर कहा और बाहर निकल गईं।

जब तक वह कमरे के बाहर नहीं गई, मैं, उन्हें देखती रही। किस प्रकार इनके साथ अमरनाथ की मृत पत्नी का निर्वाह हुआ होगा ?

तभी एक नौकर ने कहा, 'हुजूर, खाना तैय्यार है।'

'चलो अभी आये।'

हम एक अत्यन्त स्वच्छ भोजनगृह में गये जहाँ रुपहली तस्तरियों में तरह-तरह के खाद्य पदार्थ रक्खे थे। एक बड़ी तस्तरी में फल भी रक्खे थे। हम दोनों ने आमने-सामने बैठकर भोजन किया। भोजन बड़ा स्वादिष्ट था और वैसा भोजन केवल मेरी काल्पनिक दुनियाँ के इस सुन्दर गृह में ही सम्भव था वहाँ की हर एक वस्तु सुन्दर और आकर्षक थी।

समय काफी हो चुका था और मैंने घर जाने के लिये अनुमति चाही।

'अब जाओगी,' कुछ अनमने स्वर में उसने कहा, चलो, थोड़ा कुसुम और पुष्पा से भी मिल लो।'

'उन्हें सोने दीजिये।'

अभी वे सोईं न होंगी।

अमरनाथ के आग्रह की अपेक्षा मैं स्वयं उन्हें एक बार फिर देखने की इच्छुक थी। मैं उसके साथ बच्चों के आरामगाह में गई।

सफेद रजाई से दोनों के छोटे-छोटे सर अन्डों से निकले हुये बच्चों के सर की भाँति लग रहे थे। पातू पास ही बैठी थी।

'कुसुम ! पुष्पा !! देखो ये जा रही हैं।'

दोनों सफेद तितली की भाँति बिछौने से उछलीं और आकर मुझसे लिपट गईं। विह्वल हो गई। मैंने उनके मुख का प्यार

लिया और उनके बालों पर हाथ फेरती हुई बोली, 'अब सो जाओ।'

'फिर आओगी न ?' पुष्पा ने पूछा।

'हाँ, मैंने उसके ओठों को अपने ओठों से छूकर कहा।

'दोनों तब धीरे-धीरे जाकर अपने पलग पर लेट गईं।

थोड़ा सा सर उठाकर, जैसे कुछ याद कर कुसुम ने कहा, 'कल आना, तुम्हें अपनी गुडिया के बाल दिखाऊंगी।

'अच्छा !' फिर मैं अमरनाथ के साथ बाहर आई।

'माँ कहाँ होगी ?'

'अब वह सो गई होगी। उनकी तबियत आजकल ठीक नहीं रहती और वे अधिक मिलनसार भी नहीं हैं।' माँ के प्रति पुत्र का इतना स्पष्ट विचार सुनकर मैं थोड़ा विस्मित हुई। किन्तु यह सत्य था और क्षण भर के परिचय से जिसे मैं अनुभव कर चुकी थी।

जीने से हम साथ-साथ उतर रहे थे। हमारे कन्धे एक दूसरे से कभी-कभी रगड़ खा जाते थे।

'किरण !' अत्यन्त मृदुल स्वर में अमरनाथ ने कहा।

'हाँ।'

'एक बात पूछूँ ?'

'पूछिये।'

'बुरा तो नहीं मनोगी ?'

'बुरा क्यों मानूँगी ?'

'मेरे साथ विवाह करोगी ?'

मेरे शरीर का रोम-रोम रोमान्चित हो उठा। जीवन का काल्पनिक स्वप्न प्रत्यक्ष बनकर सामने आ खड़ा हुआ। अतुलनीय

सम्पत्ति की स्वामिनी केवल एक शब्द कह देने से ही मैं बन सकती थी।

तभी रवि का उदास-उदास मुख मेरी आँखों के आगे नाचने लगा। लगा जैसे कह रहा है 'मेरे साथ विवाह करोगी, किरण ?

क्षण भर में मैं पसीने से नहा सी गई। वह एक शब्द जैसे इतना भारी बन गया कि मेरी जबान तक न हिल सकी।

'बोलो किरण ?' अमरनाथ ने व्यग्र होकर कहा। उसकी गरम साँस मेरे कान के पास गले पर रेंग रही थी।

तब बड़ी मुश्किल से जैसे बड़ा जोर लगाकर मैंने कहा, 'अभी मैं कुछ नहीं कह सकती। मुझे सोचने का समय दो।

५

रातभर मुझे नींद नहीं आई। अमरनाथ के प्रश्न को लेकर मैं उलझन में पड़ गई। कल्पना का स्वप्निल संसार साकार होकर सामने खड़ा था। भव्य अट्टालिका, रोल्सरायस, आधुनिक सभ्य संसार की प्रत्येक आकर्षक वस्तु मुझे जैसे निमन्त्रण दे रही थी परन्तु दूसरी ओर रवि का उदास मुख उसी एक प्रश्न को पूछता हुआ सर आँखों के सामने आकर जैसे राह रोक लेता।

मैं रवि को प्रेम करती थी और धन की भी इच्छुक थी। रवि ने जब मुझ से विवाह के लिये पूछा तो उसका धनाभाव बाधक रूप में आ उपस्थित हुआ और अब जब ऐश्वर्य की रूपहली दुनिया सामने प्रत्यक्ष रूप में आ खड़ी हुई तो रवि के प्रेम ने बाधा दे दी।

सुख के लिये ही मैं इतनी व्यग्र थी किन्तु निर्णय न कर पाती थी कि सुख कहाँ है ? अमरनाथ की विशाल अट्टालिका में या रवि के खपरैल में ? धन में या निर्धनता में ? दोनों के प्रश्न

सामने एक समस्या भी उपस्थित कर रहे थे और जिसे सुलझाने में मैं असमर्थ सी जान पड़ती थी।

× × ×

'तेरी आँखे लाल क्यों हैं किरण ?' माँ ने सशंकित होकर पूछा, 'रात में सोई नहीं क्या ?'

'यों तो नींद नहीं आई। सर में दर्द था। और तबियत कुछ भारी थी।'

'एस्प्रो खा लिया होता। अब जी कैसा है ?'

'अब ठीक है।'

'आज कहीं जाना न होगा। दिन में थोड़ा सो लेना नहीं तो बीमार 'हाँ, पड़ जाओगी। समझीं न ?'

× × ×

सन्ध्या के झुटपुटे में खिड़की के बाहर मैंने दृष्टि डाली सड़क पर आफिस के बाबू लोग धीरे-धीरे अपने घरों की ओर लौट रहे थे। थके-हारे!

उन्हें देखकर मुझे रवि की याद आई। अक्सर वह इधर से निकलता और मेरे घर आता। यहीं जलपान करता और फिर हम दोनों सैर को निकल पड़ते। गोमती के किनारे, काफी हाउस या कभी कोई सुन्दर चित्र आया तो उसे देखने।

कल रात्रि से ही मुझे उसकी बहुत याद आ रही थी और अब उसे देखने के लिये मेरा मन अत्यन्त बेचैन हो रहा था मैंने उसके यहाँ जाने के लिये निश्चय किया और शृङ्गार करने के लिये उठ खड़ी हुई —

—अमरनाथ के साथ उस दिन सिनिमा जाना मैंने स्थगित कर दिया।

परिचित पग-ध्वनि सुनकर मैंने आश्चर्य-पूर्वक सर घुमाकर देखा, रवि द्वार पर खड़ा था। रूखे उलझे बाल, उतरा हुआ मुख और अस्त-व्यस्त कपड़े।

'अन्दर आओ न!' उसकी दशा देखकर मन न जाने क्यों अकुला उठा।

अन्दर आकर—उसने कहा। "किरन!" उसका स्वर अत्यन्त व्यथित था और जैसे मेरे हृदय के प्रत्येक अणु-अणु में जाकर समा सा गया। क्षण भर उसे देखती रही। फिर जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर उसके पास गई और उसको कुर्सी पर बिठाती हुई स्नेह पूर्वक बोली, 'यह क्या हालत बना रक्खी है अपनी?'

उसने कुछ उत्तर नहीं दिया किन्तु अश्रुपूर्ण नेत्रों से मेरी ओर देखने लगा। मेरा मन भर आया। बेचारा रवि! कितनी व्यथा है उसे! अपनी निष्ठुरता पर मुझे पश्चाताप सा होने लगा। इच्छा होने लगी कि मैं रवि के गले में बाँहें डालकर चुपके से उससे कह दूँ रवि, मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हारे साथ विवाह करूँगी, किन्तु शर्म ने जबान रोक ली।

तब चुपचाप कंघा उठाकर मैंने उसके बालों को सुलझाया और क्रीम लगाकर उन्हें ठीक किया। स्टोव में चाय बनाई और उसे पिलाई। उसके मुख पर छाई हुई उदासी विलीन हो गई और वह हँस-हँस कर मुझसे बातें करने लगा।

तभी उधर से माँ निकली और मुस्कराकर बोली 'लड़ाई खतम हो गई क्या?'

हम दोनों हँसकर रह गये।

माँ हँसती हुई चली गई। माँ रवि को बहुत चाहती थीं

उनकी इच्छा क्या थी इससे मैं अनभिज्ञ न थी किन्तु मेरी इच्छा के विरुद्ध भी वह कुछ करना नहीं चाहती थीं ।

मैंने रवि से कहा, 'मैं तुम्हारे साथ घूमने चलूँगी ।'

प्रसन्नता पूर्वक उसने कहा, 'चलो । कहाँ चलोगी ?'

'जहाँ तुम चाहो ।'

'चलो, अमीनाबाद चलें ।'

× × ×

हम सैर करने के इरादे से आये थे और इसीलिये निरुद्देश्य इधर-उधर घूम रहे थे । हम दोनों प्रसन्न थे ।

टहलते-टहलते हम लोग 'गोटे और जेवरात' एक की दूकान के सामने जा खड़े हुये । शीशे की आलमारियों में बाहर की ओर तरह-तरह के गोटे और आभूषण सुसज्जित रूप में रक्खे हुये थे । एक अत्यन्त सुन्दर और बहुमूल्य सोने की अंगूठी तथा कान के इयरिंग हमें पसन्द आये । हौले से मेरे हाथ को दबाकर उसने धीमे स्वर में कहा, 'आज ही आकर मैं इन्हें खरीद लूँगा । ये तुम्हारी उँगली और कानों में अत्यन्त शोभा पायेंगी । अपने विवाह के उपलक्ष में मैं इन्हे तुमको उपहार दूंगा ।'

शरीर भर में एक फुरहरी सी दौड़ गई । कान गर्म हो गये । उसको खींचती हुई बोली, 'कहीं कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा ? चलो आगे चले ।'

'कहेगा क्या ? झूठ थोड़े ही कहता हूँ । मैं इन्हें अभी खरीद लूंगा !'

'अच्छा-अच्छा ! पर अभी तो खरीदना नहीं है । देखो न दूकानदार कितनी उत्सुकता पूर्वक हमारी ओर देख रहा है । आओ चलो ।'

मैं उसकी बाँह पकड़कर घसीट ले चली। तब रास्ते भर वह विवाह के बाद के गृहस्थ जीवन की सोची हुई व्यवस्था बताता रहा। उसने बताया कि साठ रुपयों में भी हम लोग अत्यन्त सुखपूर्वक रह सकते हैं और उसे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। मैं मुस्कराती हुई उसकी बातों को सुन रही थी। मुझे सब अच्छा लग रहा था।......घर के पास पहुंचते ही मेरे पैर ठिठक गये बाहर रोल्सरायस अमरनाथ की उपस्थिति की घोषणा कर रही थी। कार को देख कर रवि ने प्रश्न सूचक दृष्टि से मेरी ओर देखा। तभी अमरनाथ घर के बाहर निकले और मुझे देखकर मेरी ओर बढ़े। उसके बोलने के पहले ही मैं बोल उठी 'मि० रविचन्द्र और आप मि० अमरनाथ !'

एक क्षणिक दृष्टि विनिमय के पश्चात दोनों के हाथ एक दूसरे से जा मिले। और अलग हो गये। क्षणभर के बाद जैसे फिर वे एक दूसरे से अपरिचित हो गये। अमरनाथ ने मेरी ओर दृष्टि फेर कर कहा, आज सेनिमा जाना नहीं हो सकेगा, क्योंकि समय भी नहीं है और तुम थकी भी होगी फिर इनका मन भी बहलाना तुम्हारे लिये आवश्यक है। अच्छा, नमस्ते !'

मुझे बिना कुछ कहने का अवसर दिये हुये ही वह अपनी रोल्स-रायस पर बैठ कर हवा हो गया।

रवि क्षण भर उड़ती हुई धूल की ओर देखता रहा फिर कुछ गम्भीर स्वर से बोला, 'ये हैं कौन ?'

'मेरे एक मित्र, बैरिस्टर।'

'मित्र ! बैरिस्टर अमरनाथ !'

तब मैंने उसे बताया कि वह कितना सज्जन और धनी आदमी है वह। मैंने उसे यह भी बताया कि एक बार मैं उसके यह

निमन्त्रित भी हो चुकी हूँ और उसका मकान, राज महलों की भाँति सुन्दर और विशाल है।"

रवि और भी गम्भीर हो गया! उसने विचित्र प्रकार से सिर हिलाया और फंसते गले से बोला, 'पर यह सब ठीक नहीं है!

'क्या?' विस्मित होकर मैंने पूछा।

'यही सब, उसके यहाँ जाना उसके साथ घूमना।'

'क्यों?'

"तुम नासमझ नहीं हो किरण?" उसका स्वर कुछ कठिन हो रहा था, "अगर तुम मेरा साथ चाहती हो तो उसका साथ तुम्हें छोड़ना पड़ेगा किसी को भुलावे में रखना ठीक नहीं।"

रवि के आज के इस व्यवहार ने मुझे अप्रतिभ कर दिया। मैंने कभी उससे ऐसी आशा न की थी। उसकी ओर मैंने देखा, लगा जैसे ईर्षा की प्रत्यक्ष मूर्त्ति मेरे सम्मुख खड़ी हो। जिस मनुष्य को मैं अपना भावी पति चुन चुकी थी वह अगर अभी से यह चाहें कि मैं किसी अन्य व्यक्ति का साथ न करूँ तो विवाह के उपरान्त वह कब चाहेगा कि मैं किसी की ओर आँख उठाकर भी देखूं। एक विचित्र भावना से प्रेरित होकर बिना सोचे विचारे मैंने कहा—"उसका साथ मैं नहीं छोड़ सकती। वह एक सज्जन पुरुष है। और तुम ..।"

"धन्यवाद," बात काट कर मुझे हुए स्वर में वह बोला— "मैं ईर्षालु हूँ और इस लिये कि मैं मनुष्य हूँ और दूसरी बात मैं गरीब भी हूँ इतना साफ कह देने के लिये मैं तुम्हें एक बार और धन्यवाद दूंगा।" उसने अपने दोनों हाथ जोड़े और धीरे धीरे लड़खड़ाता हुआ सा जाकर मोड़ पर गायब हो गया।

वह जब तक मुझे दिखाई दिया मैं उसे देखती रही। अब

वह चला गया.तो मुझे अनुभव हुआ कि मैंने उसके मन को ठेस पहुचाई है और उसका ईर्षा अस्वाभाविक नहीं है। उनकी भूल केवल इतनी है कि वह मुंह फट है। रोकना चाह कर भी मैं उसे न रोक सकी। मानभिमान ने जैसे मुँह बन्द कर दिया। एक उलझन लिये घर में घुसी। खाना न खाने को कह कर, माँ का किसी बात का उत्तर ठीक तरह से दिये बिना ही, बिछावन पर जा पड़ रही। मैं कुछ भी ठीक तरसे से सोच नहीं पा रही थी क्यों कि मेरा मस्तिष्क काम करने में असमर्थ सा मालूम पड़ता था। मैं थकी तो थी ही किन्तु जब मेरा मस्तिष्क भी थक गया तो मैं निद्रादेवी की गोद में लुढ़क पड़ी।

६

दूसरे दिन मैंने अमर नाथ को बुलवाया और उसे बताया कि मैंने उसके प्रश्न पर पूर्ण रूप से विचार किया है और मुझे उसके प्रस्ताव से असहमत होने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। अत्यन्त आह्लादित हो उसने पकड़ कर मुझे अपनी ओर खींच लिया और बाहुओं में भरकर अपने ओठ.....।

"नहीं, यह सब अभी नहीं।" उसके ओठों पर अपना हाथ रख कर मैं बोली—"विवाह के बाद!

"ठीक है।" साथ ही उसने अपने हाथ ढीले कर दिए और मुझसे थोड़ा अलग हट कर बैठ गया।

अधिक वय होने पर भी एक लड़की को सन्तुष्ट करने के लिए उसके पास क्या नहीं था? रवि का साथ छोड़ने का मुझे कोई दुख उस समय नहीं अनुभव हो रहा था। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि उसने रवि के बारे में क्यों नहीं कुछ पूछा?

अप्रैल के अन्त में हमारा विवाह होना तय पाया गया। अभी अप्रैल का प्रारम्भ था। उसके नौकरों चाकरों में यह बात शीघ्र फैल गई और वे मुझे अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखने लगे। अमरनाथ की माँ का व्यवहार जैसा हर एक के साथ वैसा मेरे साथ भी रहने लगा। दोनों लड़कियाँ मुझसे अत्यन्त हिल मिल गईं।

इधर कुसुम की तबियत कुछ खराब हो गई थी इसी लिये मुझे उसी के पास रहना पड़ा। जब वह बिल्कुल अच्छी हो गई तो अपने घर आने के पहले मेरी इच्छा हुई कि मैं गोमती में स्नान करूँ। अमरनाथ से मैंने अपनी इच्छा प्रगट की जिससे वह शीघ्र सहमत हो गया कुसुम ने भी मेरे साथ घाट तक जाने की इच्छा प्रगट की। अमरनाथ ने मना किया तो वह हठ करने लगी। उसका हठ देखकर मैंने कहा—'जाने दीजिये, मैं उसे देखे रहूँगी।"

'-मुझे भय है कि वह कहीं पानी में भीगे न ?'

"मैं इसका जिम्मा लेती हूँ कि वह भीगने न पायेगी।" फिर कुसुम की ओर घूम कर बोली—' क्यों कुसुम, पानी में तो नहीं जायेगी ?"

"नहीं ?"

"अच्छी बात है। पर तुम जानो।"

"अच्छा।" मैंने उत्तर दिया।

❀ ❀ ❀

नदी के किनारे बालू के घिरौंदे हमने बनाये और मिटाये। मैंने उसे कहानियाँ सुनाईं और पहेलियाँ बुझाईं। जब धूप की गर्मी शरीर के प्रत्येक अंग में अपना असर करने लगी तो तैरने

वाले कपड़े पहन कर और कुसुम को पानी के नजदीक न जाने का आदेश देकर, मैं नदी में उतर गई।

मैं अधिक देर तक न तैरी हूँगी कि मैंने अत्यन्त आश्चर्य पूर्वक देखा कि कुसुम घुटनों तक पानी में खड़ी है। मैंने उससे पानी के बाहर जाने को कहा तो वह मुस्करा कर दो कदम और आगे बढ़ गई। खीझ कर मैं उसकी ओर बढ़ी तो वह पीछे भागने लगी। तेजी के साथ दौड़ने के कारण वह एक जगह गिर पड़ी और पूरे तौर से भीग गई। शीघ्रता पूर्वक उसे उठा कर मैं बाहर निकली और उसको झिड़कती हुई उसके भीगे कपड़े उतार शाल में किसी प्रकार लपेट कर घर गई। दुर्भाग्य से उसकी नाक रास्ते से ही बहने लगी।

अमरनाथ की बुड्ढी माँ ने जो यह देखा तो आसमान सिर पर उठा लिया। अमरनाथ जी कहीं गये हुए थे यही गनीमत है।

उसके कपड़े बदल कर और पातू की संरक्षकता में उसे देकर मैं अपने घर चली आई।

७

शाम को रास्ता देखते जब आठ गये किन्तु कार न आई तो मैं बहुत बेचैन हुई। वैसे उस दिन मैंने न जाना स्थिर कर लिया था पर जब कार न आई तो मुझे कुछ दाल में काला सा दिखाई पड़ा।

रात तो किसी तरह कटी। प्रातः होते ही किराये का ताँगा कर मैं अमरनाथ के घर की ओर चल पड़ी।

अमरनाथ के घर के बाहर दो कार खड़ी थी। वे उसकी नहीं थीं। मकान में सन्नाटा था किन्तु उस सन्नाटे में अशान्ति भरी थी।

दरवान की ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से मैंने देखा। उसने बताया, कि कुसुम की तबियत अधिक खराब है और डा० हिल तथा डा० दुबे आये हुए हैं। मेरा जी धक् हो गया। मैं तेज़ी में कुसुम के कमरे की ओर बढ़ी। द्वार पर ही पातू ने मुझे रोक लिया और बोली, 'आज्ञा नहीं है ?"

"किसे मुझे ?" विस्मित होकर मैंने पूछा।

"हाँ आपको, बाबू की सख्त मुमानियत है कि आपको कुसुम के कमरे में न जाने दिया जाये।"

जैसे साँस रुक जायेगी और मैं गिर जाऊँगी किन्तु किसी तरह अपने को संयत कर मैंने पूछा, "और माँ जी कहाँ हैं ?"

"भीतर वे ...."

तभी द्वार खुला और अमरनाथ की माँ बाहर आईं। मैं उनकी ओर बढ़ी और नमस्कार कर बोली "कुसुम कैसी है माँ ?'

"अभी जिन्दा है !" कुटिल दृष्टि से मुझे देखती हुईं वह अपने कमरे में चली गईं। पातू भी पीछे-पीछे गईं।

मूर्ति की तरह जहाँ की तहाँ मैं खड़ी रही किन्तु कुसुम को एक बार देखने की इच्छा और भी तीव्रतर होने लगी। कुसुम को मैं प्यार करती थी, अत्यन्त प्यार करती थी उसे हृदय से लगा कर लगता था जैसे अपनी जायी सन्तान को हृदय से लगा रही हूँ। और आज उसके बीमार पड़ने का सारा उत्तर-दायित्व मुझी पर पड़ रहा था। मैं सोच रही थी कि क्या इसमें सचमुच ही मेरा अपराध है।

द्वार फिर खुला और अमरनाथ एक विक्षिप्त की भाँति बाहर निकला। मुझे एक बार देख कर धीरे से कुर्सी पर बैठ गया। उसकी आँखें लाल थीं जैसे उसमें आग जल रही है। वह कुछ बोला नहीं। बैठा बैठा न जाने क्या सोचता रहा ?

अन्त में उसके सन्निकट जाकर मैंने कुछ सहमें स्वर में कहा "मैं कुसुम को देखना चाहती हूँ।"

जैसे आग एकाएक भभक पड़ी हो वह बोला, "नहीं तुम उसे नहीं देख सकतीं। उसे निमोनिया हो गया है। तुम इसकी उत्तरदायी हो।"

"पर मेरा तो कोई अपराध नहीं। वह स्वयं..... ."

"मैं कोई सफाई नही सुनना चाहता। तुमने उसे पानी में न ले जाने का वचन दिया था पर मैं नहीं जानता था कि तुम अभी इतनी छोटी हो कि बच्चों की देख भी न कर सको।" मुझे और कुछ बोलने का अवसर दिये बिना ही वह फिर कुसुम के कमरे में चला गया।

अपमान के मारे मेरा हृदय फटने लगा। इस जरा सी बात का इतना बवंडर उठेगा मुझे स्वप्न में भी आशा न थी। बच्चों की देख भाल के लिये मेरे साथ विवाह किया जा रहा था! पर मैंने तो कभी ऐसा नहीं सोचा था। एक अतुल सम्पत्ति की स्वामिनी तथा उन मातृहीन छोटे बच्चों की माँ--यही मैं अपने को समझती थी। मैंने अनुभव किया कि इन दो वस्तुओं की माया ममता छोड़ कभी मेरे स्वप्नों में अमरनाथ का कोई महत्व ही नहीं था। अमरनाथ की जगह पर सदैव रवि ही मेरे रंगीन स्वप्नों का नायक बन कर आता था।

सोने और चाँदी में लिपटी हुई दुनिया में कितनी स्वार्थपरता और अशान्ति भरी है मैंने तब जाना। रवि के लिए मेरा मन व्याकुल हो उठा। क्या उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर मुझे इतना अपमान और दुख सहना पड़ता? स्वार्थी संसार के बनावटी आदर का वीभत्स रूप मैंने देख लिया था।

किन्तु कुसुम के लिये मेरा हृदय रो उठा। नन्हीं सी जान!

कहीं सचमुच मेरी जरा सी असावधानी के कारण उसके जीवन के लाले तो नहीं पड़ गये ? वह मुझे कितना प्यार करती थी। उसे जब मालूम हुआ कि अमरनाथ के साथ मेरा विवाह होगा तो उसने मुझसे पूछा, "मैं तुम्हें ममी कहूँगी न ?" मेरा हृदय ममता से आलोड़ित हो उठा। मुस्करा कर मैंने उसे हृदय से चिपटा लिया। तब से अक्सर वह मुझे ममी भी कहती थी और मेरा नाम भी लेती थी। उसके लिये मैं माँ भी थी और सखी भी

जितना कुसुम के बारे में सोचती मेरी आकुलता बढ़ती जाती अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु भी देकर मैं अगर कुसुम की जान बचा पाती तो मैं तैयार थी। न जाने किस अदृश्य की प्रेरणा वश मैंने अपने दोनों हाथ उस निराकार परमब्रह्म के समक्ष जोड़ दिये और मन ही मन मौन प्रार्थना करने लगी, "हे परमेश्वर, हे प्रभो ! मैं तुम्हारी शरण हूँ। मेरी लाज तुम्हारे हाथों है ! कुसुम को जीवन दान दो भगवान ! जीवन की सबसे प्रिय वस्तु भी मैं उस पर निछावर कर देने को तैयार हूँ। हे जीवन दाता ! अबोध कुसुम का जीवन न छीनो चाहे मेरा जीवन ले लो"

मेरी आँखों से आँसू कब से झर-झर कर बह रहे थे, मुझे नहीं मालूम किन्तु किसी की क्षीण आवाज ने मुझे चौंका दिया। लगा जैसे किसी ने दूर से, बहुत दूर से मुझे पुकारा हो 'ममी ! किरण !" यह आवाज कुसुम की थी। मुझे भ्रम नहीं हुआ था। मेरे उत्सुक कानों ने सुना कुसुम ने मुझे दूसरी बार फिर पुकारा "ममी ! किरण ममी !"

मैं उठ खड़ी हुई। एकाएक अमरनाथ तथा डाक्टर दुबे बाहर आये। डाक्टर दुबे कह रहे थे, "अब काफी ठीक है। किन्तु केश अब भी सीरियस है, आउट आफ डैन्जर नहीं समझना

चाहिये। हाँ; बच्चे की ममी कहाँ है ? और यह किरण कौन है ?"

अमरनाथ ने मेरी ओर इशारा किया।

डाक्टर दुबे ने गम्भीर होकर कहा, "अभी तक आप कहाँ थीं ? आप रो रही हैं। रोइये नहीं भगवान चाहेगा तो सब ठीक होगा। आप यहाँ क्यों हैं ? अन्दर जाइये। मरीज ने बेहोशी में आपको पुकारा है। आपका उसके पास रहना अत्यन्त आवश्यक है।"

मन ही मन मैंने भगवान को धन्यवाद दिया और द्वार खोल कर अन्दर चली गई। डा० पाल कुर्सी पर बैठे थे। दो नर्स और एक कम्पाउन्डर कुर्सी के आस पास खड़े पलंग पर निर्जीव पड़ी कुसुम की ओर एक टक देख रहे थे। उसकी हालत देख कर मेरे आँसू बरबस बह चले। उसके पलंग के पास घुटनों के बल जमीन पर बैठ कर, उसके एक हाथ को अपने हाथ में लेकर, उसके कान के पास मुँह ले जाकर खूब धीरे से मैंने कहा, 'कुसुम बेटी !"

क्षण भर बाद निर्जीव कुसुम में जीवन के लक्षण कुछ कुछ दिखाई पड़ने लगे। मेरे हाथ में रक्खे हुए हाथ की मुट्ठी धीरे धीरे बन्द हो गई। मैंने फिर अत्यन्त धीमें से उनके कान में कहा, मैं आ गई हूँ कुसुम। तुम्हारी ममी ! किरण ममी !!

कुसुम थोड़ा सा हिली, उसकी पलकों में कम्पन हुआ और उसने अत्यन्त आहिस्ते से आँख खोल कर मेरी ओर देखा फिर बहुत ही क्षीण स्वर में बोली, "किरन ममी !"

अत्यन्त विह्वल होकर मैंने उसके गाल पर अपने गाल रख दिये और अवर्णनीय सुख की अनुभूति से विभोर हो उठी।

"ओ० के०" कह कर डा० पाल उठ खड़े हुये ! नर्सों में

भी जैसे जीवन संचार हो आया। बात की बात में कमरे में अमरनाथ, उसकी माँ, पातू तथा और डाक्टर दुबे आ पहुँचे।

डाक्टर पाल कहते ही रहे "अब कोई भय नहीं" फिर मेरी ओर इशारा कर बोले, "बच्ची को होश में लाने का पूरा श्रेय इन्हीं को है। इनके कुछ शब्दों ने जादू का सा असर किया है। मैं आपको बधाई देता हूँ।"

अमरनाथ ने मेरी ओर देखा। उन आँखों में आग नहीं थी किन्तु कृतज्ञता की लहरें उमड़ रही थीं। वह लज्जित सा मालूम पड़ता था।

कुसुम जब बिलकुल ठीक हो गई तो मैं अपने घर लौट आई। अमरनाथ स्वयं कार पर भेजने आया। कार से उतर कर मैंने कहा, "धन्यवाद!"

"अब कब कार भेजूँ ?"

"इसकी अब कोई आवश्यकता नहीं।"

"क्यों ?" अत्यन्त विस्मित होकर उसने पूछा।

"क्योंकि मैं इतनी छोटी हूँ कि आपके बच्चों की देखभाल भी कर सकूँ ? मैं दोनों पर अपना अधिकार समझती थी। मैं अपने को उनकी माँ समझती थी लौंडी नहीं।" घड़ी, हीरे की अँगूठी व जो कुछ भी उसने मुझे सगाई के उपलक्ष में दिये थे उसकी गोद में रख कर बोली, "और बाकी सामान आज शाम तक आपके पास पहुँच जायेगा।"

"ओह कुसुम !" उसका मुँह पीला पड़ गया किन्तु तब भी वह मुस्कराता हुआ बोला—"तुम अभिनय अच्छा कर सकती हो किन्तु अगर सचमुच तुम नाराज हो गई हो तो मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ। उस दिन मैं होश में नहीं था और अगर मैं पहले से यह जानता कि तुम सचमुच उन्हें माँ की ही भाँति

प्यार करती हो तो भूल कर भी मुझसे ऐसी ग़लती न होती। तुम्हें तो मालूम ही है कि कुसुम को मैं कितना अधिक प्यार करता हूँ और फिर उसकी ऐसी हालत पर मेरे दिमाग़ का फिर जाना अस्वाभाविक नहीं था। यह सोच कर तुम मुझे क्षमा कर दो। मैं स्वयं शर्मिन्दा हूँ।"

"अब इससे कोई लाभ नहीं। बात जब मुँह से निकल जाती है तो फिर लौट कर नहीं आती। अब सचमुच मैं आपसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती। मन का मोह था सो अब नही है। धन में सुख नहीं है। कुसुम और पुष्पा की ममता थी सो उनको चाहे जितना भी प्यार करूँगी किन्तु उनको जरा भी तकलीफ होने पर लोग यही कहेंगे कि माँ सौतेली है। अब आप मुझे क्षमा करें

अमरनाथ के मुँह की झुर्रियाँ और उभड़ आईं अत्यन्त गम्भीर होकर वह बोला, देखो किरण, तुम भूल कर रही हो। द्वार पर आई हुई लक्ष्मी को न ठुकराओ नहीं तो पछताओगी। एक बार फिर सोच लो।

'मैंने खूब सोच लिया है बैरिस्टर साहब ! पहले मैं भूल कर रही थी किन्तु अब भूल सुधार रही हूँ। अपने एक सच्चे जीवन साथी को निराश कर आपकी अतुल सम्पत्ति पर मुग्ध होकर अपना निर्दोष यौवन बलिदान करने जा रही थी किन्तु ईश्वर को धन्यवाद है कि उसने पहले ही मुझे सीधी राह दिखा दी। अच्छा—नमस्ते !' फिर उसको कुछ भी कहने का अवसर न देकर मैं तेजी से घर में चली गई।

८

सन्ध्या का प्रकाश धूमिल होकर अन्धकार के आवरण में छिपता चला जा रहा था। पार्क से उठ-उठ कर लोग बाहर

जाने लगे थे। मैं फौहारे के पास की कुञ्ज से सटी हुई बेन्च पर बैठी रवि की प्रतीक्षा अत्यन्त अधीरता पूर्वक कर रही थी। रवि को मैंने यहीं भेट करने के लिये बुलाया था। नियत समय निकल गया था और मेरी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। तो क्या वह नहीं आयेगा ? क्या वह मुझे एक दम से भूल गया ? क्या यह सम्भव है कि कोई किसी को इतना अधिक प्यार कर फिर उसे भूल जाये ? मुझे विश्वास ही नहीं होता था।

अन्धकार का जब पूर्ण साम्राज्य हो गया और आस पास की सारी वस्तुयें जब उसी में समा सी गईं तो मैं एक दम निराश हो गई। सामने वाले घन्टा घर की घड़ी में देखा आठ बज रहे थे। एक आह भरकर खोई सी मैं उठ खड़ी हुई किन्तु किसी की आहट पाकर मैं फिर बैठ गई।

अन्धेरे में आँखें गड़ा कर देखा एक काली सी छाया उसी अन्धेरे में लिपटी मेरी ओर चली आ रही थी। मेरा जी धक-धक करने लगा। पास आने पर उसने न जाने कैसे स्वर में पुकारा, 'कौन है?'

आवाज़ सुन कर मेरा हृदय आनन्द और भय से काँपने लगा। वह रवि था। मैं कुछ नहीं बोली। वह मेरी बेन्च के और पास आया। उसके पास आने पर मैंने देखा कि उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है और कपड़े अस्त-व्यस्त हो रहे हैं।

'कौन हो तुम ?' उसने फिर पूछा। एक बार उसका स्वर कुछ कठोर था।

'मैं हूँ।' काँपते स्वर में मैंने उत्तर दिया।

'किरण ?'

'हाँ।'

'मुझे क्यों बुलाया ?'

मेरी समझ में न आया कि मैं क्या उत्तर दूँ। क्षण भर तक सोचती रही फिर उसके चरणों में गिर पड़ी। आँखों से आँसुओं की धारा बह कर उसके पैरों को भिगोने लगी। उसने मुझे उठाया और विस्मित होकर बोला, 'यह कैसा तमाशा है? तुम चाहती क्या हो?

'कुछ नहीं! मुझे केवल क्षमा कर दो।' रोती हुई मैं बोली।

और उसका—उस अमरनाथ बैरिस्टर का क्या हुआ?' व्यंग पूर्वक उसने पूछा। उसके व्यंग की जरा भी परवा न करती हुई, प्रारम्भ से अन्त तक सारा किस्सा मैंने सुना दिया।

'पर मैं गरीब हूँ किरण!' अन्त में उसने कहा।

'कोई परवाह नहीं। मुझे धन न चाहिए धन से मुझे घृणा हो गई है। मुझे ठुकराओ नहीं। मुझे क्षमा कर दो।'

'क्षमा तो मैं तुम्हें करता हूँ, किन्तु मेरे साथ विवाह कर तुम सचमुच सुखी नहीं होओगी। तुम्हें दुख सहने पड़ेंगे क्योंकि मेरी नौकरी छूट गई है।'

'दुख सहर्ष सह लूँगी। तुम विद्वान हो, पढ़े लिखे हो, कहीं न कहीं फिर काम मिल जायेगा।'

'क्या तुम यह सब सच कह रही हो? क्या इतने पर भी तुम मुझे अपनाने को तैयार हो?'

'क्या तुम मुझे, मेरे सारे अपराधों को क्षमा कर, अपने इन चरणों की दासी बनने का अधिकार दोगे? कहती हुई मैं उसके चरणों पर फिर गिर पड़ी।

और तब अगले मुहूर्त में मैं उसकी बाहों में आबद्ध थी और उसके ओंठ......................

"उसके ओठ ! उसके ओठ क्या हुए !" लड़कीने चीखकर पूछा सरोजनी लड़की के चेहरे को आश्चर्य से देखती हुई बोली "सब रामायण खतम हो गई सीता किसकी ताऊ" तुम्हें इतना भी न मालूम हो सका कि उसके ओठ क्या हुए! वह दाघ साँस लेती हुई अपने आप कह उठी ऐसी मूर्ख लड़कियों के बीच हे भगवान कैसे दिन बीतेगा। फिर कुछ क्षण तक वहाँ रुक कर कोठे के बारजे पर आ सामने की ओर निरखने लगी। सबेरे की किरण ठीक उसके मुँह पर आ रही थी। जिससे उसके चेहरे की लाली दूनी होकर चमक रही थी.................

विस्तार के साथ उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का बर्णन न कर, केवल इतना बता देना पर्याप्त होगा कि वह एक रूपवती युवती है। चेहरा उसका थोड़ा-सा गोल और नाक पतली है। उसके लम्बे काले बाल, दूर से चमकते हैं। भौहें ज़रा-सी टेढ़ी हैं। जिस मैदान की ओर वह देख रही है, उस मैदान के बीच से होकर एक सड़क निकल गई है और उस सड़क के किनारे दोहरी पाँति में पेड़ लगे हैं। दोनों ओर की वृक्षावलियों की परछाईं सूरज की प्रतिकूल किरणों के कारण कई गुनी लम्बी होकर चरों ओर पड़ रही है। आज का दिन बहुत सुहावना है। बादल फट गये हैं। रात को थोड़ी-सी ओस भी पड़ी है। जिससे घास पर जमी ओस की बूँदें सूरज की किरण का संयोग पाकर मोती-जैसी झलक रही हैं।

दो सप्ताह बीते, इस कोठी के मालिक का देहान्त हो चुका और यह कोठी इस युवती के भाग्य में पड़ी। कोठी के माने उस हवेली को ही न समझिये; बल्कि उस कोठी में लगे इलाक़े, खेत, बँगले, रुपये-पैसे, लेन-देन और एक बहुत पुराना इतिहास इन तमाम चीज़ों को समझिये। उन सबकी मालकिन है वही सरो-

जिनी। जिस समय वह बारजे पर खड़ी सामने को निरख रही थी, उसके भावों से व्यक्त होता था कि वह कुछ गुन रही है। सम्भवतः वह सोच रही थी कि इस कोठी की वह मालकिन है। पर इस भावना को व्यक्त करते समय उसके चेहरे पर किसी प्रकार के अभिमान के लक्षण नहीं थे। थोड़ी देर बाद उसने एक दीर्घ निश्वास ली और तब वह अपने आप कहने लगी—'मैं इस सारी सम्पत्ति की एक मात्र स्वामिनी हूँ। उफ़! इतनी बड़ी हवेली में मैं क्योंकर अकेली रहूँगी।' तभी कोठी के सामने घोड़ा-गाड़ी के पहिये की खड़खड़ाहट हुई। वह बारजा छोड़ कर अपनी बैठक में चली गई। कुर्सी पर बैठ कर इस तरह सोचने लगी मानो किसी की इन्तजारी कर रही हो। थोड़ी देर में बैठक का दरवाजा खुला, नौकर ने सूचना दी—श्रीमती लक्ष्मीबाई आ रही हैं।'

लक्ष्मीबाई अधेड़ आयु की स्त्री थीं। चेहरे पर चिन्ता के भाव थे। आँखें थोड़ी भीतर धँसीं थीं। वे कमरे के भीतर आईं। सरोजिनी ने मधुर मुस्कराहट के साथ उनका स्वागत किया और दौड़ कर उनसे चिपक गई—'तो मौसी आप आ ही गईं! बड़ी दया की। मैं तो घबराती थी कि यहाँ कैसे अकेली रहूँगी।'

'हाँ बिटिया, मैं आ गई।—लक्ष्मी ने कहा। वे एक नये स्थान पर आने की वजह से थोड़ी व्यग्र मालूम होती थीं। फिर बोलीं—मैं सीधे यहीं आई हूँ। तूने मुझे पहले क्यों नहीं बुलाया। (सरोजिनी को ध्यान से देखती हुई) अरे! तू तो काफ़ी बड़ी हो गई है। तेरा रूप तो ऐसा निखर आया है जैसे तपा-तपाया सोना।'

सरोजिनी के चेहरे पर इस प्रशंसा से एक हल्की-सी अरुणाई छा गई। उसकी तरुणाई और भी खिल उठी। वह पैर के

अँगूठे से ज़मीन कुरेदने लगी। एकाएक उसे ख्याल हुआ, अरे! मैंने मौसी को बैठने के लिए तो कहा ही नहीं; कितनी धृष्ट हूँ मैं, और तब वह बोली— बैठो मौसी!' और उस लड़की से बोली नीना, मौसी के लिए जल पान लेआ। नीना तत्काल जल-पान लिए उपस्थित हुई।

'तुम नमकीन तो खाती हो न मौसी! अरे हाँ, तुमको तो पेड़ा अच्छा लगता है। जा भण्डारी से थोड़ा पेड़ा माँग ला।'

लक्ष्मीबाई अपरिचित स्थान और सरोजिनी को देख कर सोचने लगीं, 'सरोजिनी कितनी भाग्यशालिनी है। इतनी बड़ी सम्पत्ति की मालकिन बन बैठी है। फिर वे प्रकट होकर बोलीं— 'बेटी! मुझसे सब बातें विस्तार के साथ कहो। यह सब कैसे हुआ? मैं विश्वास नहीं कर सकती। मेरी बहन (तुम्हारी माँ) ने किस तरह दुख में दिन काटे, किस तरह कुटौनी-पिसौनी करती जीती रही, मुझे मालूम है। वह देवी थी, देवी! उसी के तप से तू इतनी भाग्यशालिनी हुई है।'

सरोजिनी कोठी के मालिक की सगी वारिस न थी। कोठी के मालिक का कोई और नज़दीकी न था। दूर के रिश्ते में दो व्यक्ति होते थे—एक युवक और एक युवती। युवक और कोठी के मालिक में वैमनस्य था। अस्तु, उन्होंने सरोजिनी को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। सरोजिनी की माँ और बाप कभी के मर चुके थे। सरोजिनी अपने एक रिश्तेदार के यहाँ रहती थी। उसकी उस पुरानी जिन्दगी और इन नए ठाट-बाट में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। जिस रिश्तेदार के यहाँ सरोजिनी रहती थी, उसके यहाँ उसे टहलनी का काम करना पड़ता था। यह मौसी जो आज इतनी मीठी और प्रेम-भरी बातें कर रही है, उसकी तब बात भी नहीं पूछती थी। यदि मौसी चाहती तो सरोजिनी

को अपने साथ रख सकती थी—सरोजिनी को आराम दे सकती थी। लेकिन दुनिया तो सुख की साथी है; दुख में कौन किसका साथ देता है।

आज उसी मौसी को सामने पा सरोजिनी को पिछली सारी बातें याद हो आईं। लेकिन पिछली बातें सोचकर वह अपना दिमाग़ नहीं बिगाड़ना चाहती थी। उसने विचारा—ऐसा तो सभी करते हैं। निन्नानवे प्रतिशत उसी का साथ देते हैं; जिसके पास धन, माल और सम्पति रहती है। गरीबों को कौन पूछता है। यदि दुनिया गरीबों का ही साथ देने लगे तो फिर भगवान् के शासन में खलल न पड़े। लोगों का अपने किये का फल कैसे मिले! ऐसा विचार कर उसने अपने मन से यह बात दूर कर दी कि कभी इसी मौसी ने साधन रहते हुए भी उसे नहीं अपनाया।

उसने पुनः मन ही मन कहा, मेरी मौसी ने मेरे साथ कर्तव्य का पालन नहीं किया तो मैं क्यों पीछे रहूं? और तब प्रकट होकर वह बोली—'मौसी, मुझे यह सब धन-सम्पत्ति और लाखों रुपये जो मिले हैं उसकी कथा कुछ लम्बी चौड़ी नहीं है। चाचाजी ने मुझे अपनी मृत्यु के पाँच दिन पहले बुलवा लिया था। मुझे याद है वह दिन, जब मैं सीधे यहाँ लाई गई। मेरे कपड़े मैले-कुचैले थे। मेरे पास एक ही धोती थी, सो भी फटी थी। मुझे फटेहाल देखकर भी दयालु चाचाजी ने, जो लाखों के स्वामी थे मुझसे घृणा नहीं की। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया। मैंने देखा एक बड़ी सुन्दर चारपाई पर मोठे-मोटे गद्दे बिछे हैं, उन पर दूध जैसी सफेद चादर पड़ी है। एक वृद्ध सज्जन उस पर लेटे हैं, जिनका निर्बल शरीर देख मैंने सोचा वे इस संसार से शीघ्र कूच कर जायँगे। पर उनकी आँखों में एक दिव्य

ज्योति थी। उनके चेहरे पर अपूर्व तेज था। मैंने अब तक वैसा महान् व्यक्ति इतने निकट से नहीं देखा था।'

सरोजिनी कहते कहते क्षण भर के लिए चुप हो गई; जैसे वह उस दिन की बातें याद कर रही हो। लक्ष्मीबाई तब तक जल-पान से निपट चुकी थी। सरोजिनी की बात समाप्त होते ही वे जाग-सी पड़ीं। बोलीं—'तो तुम इस तरह यहाँ आई और इस सम्पत्ति की मालकिन बनीं!' 'मालकिन' कह कर वह हँस पड़ीं—'इतनी छोटी आयु में! खैर मैं माँ और तुम बेटी की तरह यहाँ रहेंगी। जैसे माँ अपनी बेटी को प्यार करती है, उसी तरह मैं भी तुम्हें प्यार करूँगी। जैसे बेटी अपनी माँ को प्यार करती है, आज्ञा मानती है वैसे ही तुम्हें भी मेरी आज्ञा माननी पड़ेगी।

उसी समय दीवान साहब आये। वे कोठी के मुंशी जी नाम से मशहूर थे। उन्होंने कोठी के तमाम नौकरों को बुला कर कहा 'देखो, ये हमारी मालकिन की मौसी हैं, इन्हें किसी तरह की शिकायत न हो!'

'सरोजिनी, तुम कितनी भाग्यवती हो!'—लक्ष्मीबाई कुर्सी पर उचक कर बैठती हुई बोलीं—

'हाँ, मैं भाग्यवती तो जरूर हूँ मौसी, लेकिन अब मेरी आजादी छिन गई है। तब मैं जहाँ चाहती थी जा सकती थी और अब तो मुझे बाग में भी निकलने पर ख्याल करना पड़ता है। मुझे एक अजीब भाव-भङ्गिमा बना कर रहना होता है।

लक्ष्मीबाई मुस्करा पड़ीं—'तो क्या यह परतन्त्रता तुम्हें पसन्द नहीं है। ऐसी परतन्त्रता तो तुम्हारी जैसी लड़कियों को चाहिए ही!'

—'मैं भी ऐसा ही सोचती हूँ। इस समय मैं यहाँ रहने के

लिए मजबूर हूँ। खैर, अबतो मुझे यहाँ रहना ही है। इसलिए मैंने आपको यहाँ बुलाया है। भला अकेली मैं यहाँ रह भी सकूँगी!'

लक्ष्मीबाई ने अपने मन में कहा, 'बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद!' और फिर प्रकट हो बोली—'अगर ऐसी जगह तुम्हारी तबियत नहीं लगी तो भला और कहाँ लगेगी। मैं तो समझती हूँ कि मैं माया के बने बनाये महल में पहुँच गई हूँ। मुझे यदि इस मकान में सौ बरस भी रहना पड़े तो मेरा जी न उकताये।'

'और महज इस बैठक को देख कर! कहीं तुम सारी कोठी देखो तो न जाने क्या कहो। ऐसा कह सरोजिनी खिलखिला कर बोली—चलो तुम्हें कोठी घुमा लाऊँ। तब दोनों कोठी के प्रशस्त हाल के एक चौड़े दरवाजे से होकर भीतर घुसीं। हाल की दीवारों पर बड़ी-बड़ी चौकोर तसवीरें लटक रही थीं। वह एक-एक तसवीर देखने और दिखाने लगी—ये हैं राय निपेन्द्रचन्द्र महाशय, येही इस जमीदारी के संस्थापक थे। इनकी बगल में राय रामचन्द्र हैं, ये इस कुटुम्ब के सबसे प्रतिभाशाली व्यक्ति हो गये हैं। और यह देखो, यह भव्य-चित्र; आह! कितनी दयालुता टपकती है इनके चेहरे से! ये हैं राय विनोदविहारी महाशय; मेरे भाग्यविधाता चाचाजी!'

लक्ष्मीबाई ने एक लम्बी साँस ली और बोलीं—ये कितने सुन्दर हैं।

काश…!'

सरोजिनी मुस्करा कर बोली—'अगर युवावस्था में तुम्हारी इनकी मुलाकात हुई होती तो आज तुम मेरी चाची होतीं; यही न सोच रही हो!'—और ऐसा कह कर वह अपनी अधेड़ उम्र की मौसी के गले में बाहें डाल ऐसी लटक पड़ी जैसे पाँच बरस

की बच्ची हो। लक्ष्मीबाई अपने गले को छुड़ाते हुए बोली—तो तू मेरी बेटी है न; तुझे ऐसा मजाक करना चाहिए ?'

'अरे वाह! क्या खूब, यह कोठी है कोठी! यहाँ मजाक के समय छोटा बड़ा समझना अपराध समझा जाता है। दरबार लगता है तब मजाक करने ही के लिए लोग इकट्ठा होते हैं।'—'ऐसा कहते हुए वह कोठी से सटी घुड़साल की ओर गई। घुड़साल दिखाती हुई बोली—'यह चाचाजी का घुड़साल है। देखो न कितने सुन्दर घोड़े हैं। यह चितकबरा बछेड़ा मुझे बहुत प्यारा है।' वह घोड़े के निकट चली गई। घोड़ा भी जैसे मालकिन को पहचान गया था। उसने सरोजिनी के कोमल हाथों में अपनी गर्दन डाल दी। सरोजिनी घोड़े की गर्दन को सहलाने लगी। लक्ष्मीबाई घबराहट में बोली—'अरे बिटिया वहाँ से हट जा: घोड़ा है घोड़ा! लड़कियों को घोड़ों से दूर रहना चाहिए।

सरोजिनी ठहाका मार कर हँस पड़ी—'ओह; यह तो मेरी सवारी का घोड़ा है मौसी!'

लक्ष्मीबाई ने कहा—'तुम घुड़सवारी भी करती हो?'

'हाँ, मैं घोड़े पर भी चढ़ती हूँ। अङ्गरेजी पढ़ती हूँ; इसके लिए एक मिस्ट्रेस नियुक्त हैं। गाना-बजाना सीखती हूँ, नहीं तो मेरा समय कैसे कटे। मेरे इलाके में एक जङ्गल है। मैं प्रायः नाश्ता करने के बाद घोड़े पर चढ़ कर उसी ओर चली जाती हूं। घण्टों वहीं रहती हूँ। एक दिन तुम्हें भी ले चलूँगी। तुम देखोगी वह जङ्गल कितना सुहावना है। तुम अपने को भूल जाओगी, तुम्हारा मन इस कोठी में तब न लगेगा।'

दोनों में ये बातें हो ही रही थीं कि नौकर ने इत्तिला दी—'एक सज्जन मालिक से मिलना चाहते हैं। उन्होंने कहा है कि काम जरूरी है, मिलना आवश्यक है। वे बाहर खड़े हैं।'

'भेजो'—कह कर सरोजनी आइने में अपने को देखने लगी। आगन्तुक महोदय नौकर के साथ बैठक में दाखिल हुए।

आगन्तुक ने (उसे युवक कहना अधिक उचित होगा) सरोजिनी की ओर तिरछी निगाह से देखा और फिर कहा—'आप ही यहाँ की स्वामिनी हैं ?'

'स्वामिनी ? हाँ, स्वामिनी ही समझिए।'

'आपको मैंने तकलीफ दी, इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मैं सामनेवाली सड़कपर घूम रहा था, मुझे यह अँगूठी गिरी मिली। आस-पास और कोई मकान नहीं है। मेरा ख्याल है कि यह अँगूठी आप ही लोगों की है। यों तो मैं कीमती पत्थरों का पूरा पारखी नहीं, फिर भी मेरा ख्याल है कि यह अँगूठी कीमती होगी और इसे पहनने वाला व्यक्ति भी साधारण न होगा।' आगे कुछ न कह उसने सरोजिनी की ओर अँगूठी बढ़ा दी। अँगूठी लेते हुए सरोजिनी बोली—'आपको कैसे मालूम हुआ कि यह अँगूठी इसी कोठी में रहने वाले किसी व्यक्ति की है ?'

युवक ने कहा—'यह मेरा अनुमान मात्र है। मैंने इसी कोठी के सामने ही पाया है।'

'आपको धन्यवाद है। मैं स्वयम सोच रही थी कि अंगूठी क्या हुई ! सोने का गुम होना अशुभ है। इस अशुभ कार्य को आपने शुभ किया। कहिये आपकी क्या सेवा करूँ ? यदि अनुचित न समझे तो थोड़ा-सा जल-पान कर लीजिए।'

युवक ने कहा—'धन्यवाद ! पर मुझे जल-पान की आवश्यकता नहीं है।'

सरोजिनी ने कहा—'क्या किसी को जल-पान की भी आवश्यकता हुआ करती है ? आपने मुझे इतना लाभ पहुँचाया है। अस्तु, मैं आपका मुँह मीठा कराये बिना न जाने दूँगी। यह

अँगूठी दो हज़ार से अधिक रुपये की है।'—कह‌कर वह युवक की ओर देखने लगी। उसे लगा कि युवक को अवश्य क्लेश हुआ होगा कि उसने दो हज़ार की अँगूठी थोथे आशीर्वाद के कारण लौटा दी। पर यह सुनकर भी कि अँगूठी दो हजार से अधिक कीमत की थी, युवक के चेहरे पर कोई चढ़ाव-उतार नहीं हुआ। उसके चेहरे से मालूम होता था कि वह सोच रहा है कि दो हजार क्या दो लाख की भी अँगूठी होती तो भी वह उसे हड़पने की कोशिश न करता।

सरोजिनी ने नौकरानी से जल-पात्र लाने को कहा। फिर बोली—'भीतर कमरे में चलिए।'—और बिना युवक की स्वीकृति या अस्वीकृति पाये ही वह भीतर की ओर चल पड़ी, मानो उसे यह विश्वास था कि युवक बिना किसी विरोध के उसकी आज्ञा पर पीछे-पीछे चला आयेगा। दोनों एक सुसज्जित कमरे में पहुँचे। सरोजिनी ने उन्हें कोच पर बैठने का सङ्केत किया, फिर बोली—'आप यहाँ कैसे घूम रहे थे।

युवक हँस पड़ा। उसकी हँसी का सुरीलापन सरोजिनी के कानों में गूँज उठा।

युवक ने कहा—'यों ही!'

सरोजिनी—'निरुद्देश्य!'

युवक—'आज-कल के अधिकांश युवक निरुद्देश्य ही तो घूमा करते हैं!'

सरोजिनी—'पर इस तरह निरुद्देश्य घूमने वाले युवक तो......!'

युवक बीच में ही बोल उठा—'आप का मतलब है कि इस तरह निरुद्देश्य घूमने वाले युवक खतरनाक होते हैं; यही न!'—कह कर वह ठहाका मार हँस पड़ा।

'पर आपको यह जान कर खुशी होगी कि मैं किसी की हानि पहुँचाने की इच्छा से नहीं घूम रहा हूँ !'—कहते-कहते वह खड़ा होकर बोला—'मुझे क्षमा कीजिए। मैं भविष्य में आपकी कोठी के सामने कभी न आऊँगा।'

सरोजिनी घबरा कर बोली—'नहीं-नहीं, मेरा मतलब यह न था। मैं स्वयम् क्षमा चाहती हूँ। आप से तो मुझे किसी तरह की हानि न हुई, उलटे लाभ ही हुआ। कृपा कर बैठिए।'

पर युवक तब भी खड़ा ही रहा। सरोजिनी युवक के पास आकर बोली—'आप न बैठेंगे ?' युवक ने देखा सरोजिनी की आँखें उमड़ आई हैं; तब वह बैठ गया।

सरोजिनी ने कहा—क्या मैं आप का नाम जान सकती हूँ ?'

'लोग मुझे रत्नाकर कहते हैं, मैं कौशलगढ़ का रहने वाला हूँ।'

'रत्नाकर !'—और ऐसा कह कर वह कुछ सोचने लगी। मालुम हुआ कि वह जो बात सोच रही है उसमें कोई बड़ी गुत्थी है, जिसे वह सुलझा नहीं पा रही है। तब प्रकट होकर बोली—'कौशलगढ़ तो यहाँ से बड़ी दूर है, आप यहाँ कहाँ रहते हैं ?'

रत्नाकर ने कहा—'मैं पास ही रहता हूं। मुझे आये थोड़े ही दिन हुए हैं।'

'आप देशाटन करने निकले हैं ?'

रत्नाकर—'हाँ, देशाटन ही समझ लीजिए।'

'तब तो यहाँ आकर आप को निराशा ही हुई होगी; क्योंकि इस छोटे-से क़स्बे में आप को नई चीज क्या देखने को मिल सकती है !'

रत्नाकर ने कहा—'मुझे हर जगह नई चीज दिखाई पड़ जाती है। मेरी दृष्टि में नवीनता की कुछ और ही परिभाषा है। मैंने यहाँ

बहुत-सी नई बातें देखी हैं। उदाहरण के लिए मैंने सुना है कि यहाँ के जमींदार को बागों में बड़ा प्रेम था। मैं बाग-बगीचों के सम्बन्ध में बड़ी दिलचस्पी रखता हूँ। मेरी इच्छा है कि एक ऐसा सुन्दर बाग लगाऊँ, जिसमें संसार के सभी कटिबन्धों की वनस्पतियाँ लगाई जा सकें। एक से एक अप्राप्य फल और फूल के पौदे उसमें उगाये जायँ। जल, थल सभी के वृक्ष हों। वह एक ऐसा उद्यान हो जहाँ चिन्ताकुल अपनी चिन्ता से मुक्ति पा सके! वनस्पति-शास्त्र में रुचि रखने वाले तथा सुन्दर पुष्पों व वृक्षों से प्रेम करने वाले व्यक्तियों के लिए वह एक तीर्थ सरीखा हो।'

सरोजिनी बिना कुछ कहे तन्मय होकर रत्नाकर की ओर देख रही थी और वह कहता रहा—'मैं स्वयम् इतना सम्पत्तिशाली नहीं कि अपनी उस कल्पना को मूर्तिमान कर सकूं; अर्थात् एक ऐसे उद्यान को तैयार कर सकूँ। इस इच्छा की पूर्ति के लिए न जाने क्यों मेरे हृदय में सदा एक हूक-सी उठती रहती है। सच पूछिए तो मेरी यात्रा का यही उद्देश्य भी है। स्थान-स्थान की वनस्पतियों को मैं देखता हूं। साथ ही ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों की खोज भी करता हूँ जो मेरी इस योजना की पूर्ति में सहायक हो सकें।

सरोजिनी ने प्रसन्न होकर कहा—'आपका लक्ष्य बहुत सुन्दर और अनूठा है। मुझे आज तक कोई ऐसा व्यक्ति न मिला जो बाग़ के सम्बन्ध में इतनी दिलचस्पी रखता हो। कलाकार मिले, साहित्यक मिले, सङ्गीतज्ञ मिले, इतिहास-प्रेमी मिले; लेकिन उद्यान-प्रेमी कोई नहीं मिला। चाचाजी को बाग़ से बड़ा प्रेम था। उन्होंने कई बाग़ लगवाये थे। उन्होंने पाँच-छै मील के रक़बे का एक जङ्गल भी रक्षित रख छोड़ा है। आज उनके बाग़ों की दशा

विधवा नारी की-सी हो रही है।' क्या ही अच्छा, हो यदि आप उन बागों में फिर से नवजीवन लायें।'

रत्नाकर ने कहा—'आपका प्रस्ताव मेरे अनुकूल है, आपने मेरे उद्देश्य के साथ सहानुभूति दिखाई, उसके लिए धन्यवाद है।'

सरोजिनी ने उत्कंठित होकर कहा—'तो क्या आपको मेरा प्रस्ताव स्वीकार है?' आप उन बागों को देख सकते हैं। जिस दिन अवकाश हो मैं कोई सवारी भेज दूंगी। पैदल जाने की आवश्यकता नहीं। आप इन में अपने मन के अनुसार परिवर्तन कर सकते हैं; इच्छा होने पर नया बाग भी लगा सकते हैं। यदि आप पसन्द करेंगे तो जङ्गल के बीच एक मैदान आपके लिए साफ करवा दूंगी। वहाँ आप अपने मन का उद्यान भी लगा सकते हैं। जो खर्च लगेगा मैं दूंगी। समझूँगी चाचा जी का स्मारक बनवा रही हूँ।'

रत्नाकर ने कहा—'आप-सा व्यक्ति तो मुझे आज तक नहीं मिला। मैं आपके बागों और उस जंगल को अवश्य देखूँगा। यों तो मुझे अवकाश ही रहता है फिर भी एक उचित समय देख कर आपको सूचना दे दूंगा। आज आपको बहुत कष्ट हुआ।

सरोजिनी बोली—'आपके दर्शन से मुझे बड़ा हर्ष हुआ। ऐसा मालूम हो रहा है जैसे आप मेरे कोई सगे से हैं।' कहकर उसने नमस्कार करने के लिए हाथ उठाया। रत्नाकर ने भी हाथ उठा कर उत्तर दिया। रत्नाकर ने चलते-चलते एक बार पीछे की ओर मुड़कर देखा। सरोजिनी उसे ही देख रही थी। आँखें मिलते ही उसने लज्जित हो अपनी आँखें फेर लीं।

रत्नाकर घर वापस जा अपने कमरे में बैठ, कुछ घंटे पहले घटने वाली घटना पर विचारने लगा—'दो हजार की अँगूठी! इस गरीबी में दो हजार क्या कम थे! गली-गली ठोकर खाता हूँ, तक-

तीफ उठाता हूँ। दो-चार पैसे के लिए कभी-कभी छटपटा कर रह जाता हूँ। भूख लगती है तब ऐसे पेड़ की पत्तियाँ खाता हूँ जिनके खाने से किसी तरह का नुकसान नहीं हो सकता। पर छिः, यह क्या मैं सोच रहा हूँ। २०००) से मेरी कितनी जिन्दगी कटेगी। और फिर राह में पड़ा धन! धन तो उसे कहिए जो पसीना बहा कर मिले जिसका था उसे दे दिया। खोये धन को वापस पाकर उसके मालिक को जो आनन्द होता है वह आनन्द क्या खोये धन के पाने वाले को हो सकता है! और उस कीमती अँगूठी को देकर क्या मैंने उससे भी बड़ी कीमती चीज नहीं पाई है! ऐसा कहते हुए वह सरोजिनी की आँखों को मन ही मन पढ़ने लगा। देर तक का थका हुआ था, खूब मीठी नींद आई और नींद में उसने देखा एक सुन्दर स्वप्न--

वह एक अपरिचित स्थान पर जा पड़ा है। उस स्थान के चारों ओर एक से एक नये-नये दृश्य और ऐसे दृश्य जो सहज ही मन को मोह लें, उसे दिखाई पड़े। वह उस स्थान में घुसते ही एक ओर को बढ़ा। उसके सामने एक प्रशस्त प्रासाद दीख पड़ा। वह प्रासाद की ओर जाने वाली सड़क पर आ गया। सड़क के दोनों ओर सिसुंपा के वृक्ष एक दूसरे से सटे इस तरह से खड़े थे जैसे उस विशाल वीथिका के प्रहरी हों। सड़क के अगल-बगल सड़क के साथ साथ एक नहर बनी थी। नहर के दोनों कूलों पर लम्बी लम्बी दूबें लटक रही थीं। स्थान स्थान पर चौगान बने थे। छोटी छोटी वाटिकाएँ लगी थीं। वह चलता गया। कितनी दूर गया, इसका उसे कुछ पता न चला। मालूम हुआ जैसे वह बड़ी दूर निकल आया हो। पर उसे किसी तरह की थकावट नहीं मालूम होती थी। वह अब प्रासाद के बाहरी प्राङ्गण में पहुंच गया। उसने सिर उठा कर प्रासाद की ओर देखा। उसे

उस प्रासाद की अटारियाँ देख कर बड़ा कुतूहल हुआ। न जाने किस कलाकार ने उस अट्टालिका का निर्माण किया था। प्रतीत होती थी मानो किसी ने अपनी शिल्पशाला में बैठे बैठे वर्षों उसे गढ़ा हो और गढ़ने के बाद जब पूरी तैयार हो गई हो, तो शिल्प-शाला से उठा उस स्थान में लाकर ऐसे जड़ दिया हो जैसे नीलाम्बर में तारिका। जमीन के धरातल से वह कोठी थोड़ी सी ऊँची थी। कुर्सी (प्लिन्थ) पर उस अट्टालिका का निर्माण हुआ था और वह सड़क, जिससे होकर वह आया था, ऐसी मालूम होती थी जैसे उस मकान के चारों ओर घूम कर खत्म हो गई हो।

अटारी के हर द्वार पर रङ्ग-बिरङ्गी लताएँ लटक रही थीं. निर्जन--कोई नहीं--चिड़िया तक नहीं। उसे कुतूहल हुआ। वह आगे की ओर बढ़ा। उसका कुतूहल यह देख और भी प्रबल हो उठा कि सभी फाटक खुले हैं। उसकी सफाई आदि देख कर पता चलता था, जैसे कुछ लोग वहाँ रहते है। उसने एक बार जोर से सीटी बजाई। सोचा, कोई होगा तो जवाब देगा पर जब कोई जवाब न मिला तो उसे निश्चय हो गया कि उस समय वहाँ कोई नहीं है। वह भीतर चल पड़ा। एक एक कमरा घूम घूम कर देखने लगा। सभी खाली थे, पर कमरा में तरह तरह के आरम-आशाइस के सामान सजे सजाये पड़े थे।

हर कमरे में एक एक व्यक्ति की सारी आवश्यकता को अमीरी ढंग से पूरी करने के लिए पर्याप्त सामान रखे थे। तेल-फुलेल और सुगन्धियों से सजी छोटी छोटी मेजे पड़ी थीं। पुस्तकें भरी आल-मारियाँ और लिखने पढ़ने की मेज कुर्सियाँ थीं। एक सुन्दर चारपाई बिस्तर और ओढ़ने के परिधान, पीकदान, झारियाँ व बत्तीदान भी थे। इतना ही नहीं, कमरे के भीतर गौर से देखने पर हर जगह धूप-बत्तियाँ सुलगती हुई मिलीं। उसने सब कमरे

देख डाले। केवल एक कमरा बाकी था और वह सबसे बड़ा प्रतीत होता था। वह उसमें भी पहुँचा। वह कमरा चौकोर था। दीवालों पर दोहरी पाँति में तस्वीरें लगी थीं। वे तस्वीरे मुँह मुँह बोलती दीख पड़ीं। फर्श पर लम्बे रोयें की कालीनें पड़ी थीं। उन पर की गई कारीगरी देख कर मालूम होता था मानो रेखा-गणित के द्वारा बनाई गई क्यारियों में रङ्ग-बिरङ्ग फूल लगाये गये हैं। कमरे के बीच में खड़ा होते ही वह ठगा सा रह गया। उसने देखा, दीवाल में सटी हाथी दाँत की बनी गद्देदार कुर्सियाँ लगी हैं, हर कुर्सी पर मूर्तियाँ स्थापित हैं। प्रत्येक मूर्ति एक ही रूप और रेखा की मालूम पड़ी। मूर्तियों के मस्तक पर मुकुट, गले में बड़ी बड़ी पुष्पों की मालायें, कानों में कमल की कलियाँ; संक्षेप में अजन्ता के चित्रों सी वेष भूषा में वे तमाम प्रतिमाएँ मालूम पड़ीं। बढ़ते हुए कुतूहल को शान्त करने के विचार से उसने चारों ओर आँखें दौड़ानी शुरू कीं। सब के बीच सब कुर्सियों से ऊँची एक कुर्सी पर उसे एक श्रेष्ठतर प्रतिमा दीख पड़ी। जिसके वेश में और मूर्तियों से कोई नवीनता नहीं थी; लेकिन उस प्रतिमा की बनावट की पूर्णता उसे ऐसी जँची जैसे शिल्पी ने अपनी सम्पूर्ण कला का निचोड़ उसी प्रतिमा में भर दिया है। वह उस प्रतिमा की ओर चला। यह जानने के लिए कि शिल्पी की छीनी ने किस चतुराई और कला के साथ उस प्रतिमा को गढ़ा हैं। वह उस पर अपना हाथ फेरने लगा। उसे थोड़ी उष्णता का अनुभव हुआ। प्रतिमा में शीतलता के स्थान पर उष्णता का अनुभव कर वह आश्चर्य ही कर रहा था कि एकाएक बड़े जोर की खिलखिलाहट हुई। उस निर्जन स्थान में खिल-खिलाहट सुन कर वह चकित हो उठा। उसके आश्चर्य का, यह देख ठिकाना न रहा कि वे तमाम प्रतिमाएँ सजीव हो रही हैं।

उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण हर ओर उसने देखा, हर कोना देखा और कुछ क्षण तक देखताही रहा। एकाएक एक मन्थर ध्वनि उसके कानों में पड़ी। हर एक प्रतिमाएँ उठ पड़ीं। अपनी कुर्सी के सामने ही लघु चक्कर देती हुई वे थिरक उठीं, उनके परिधान फहरा उठे। उनकी बेणियाँ नागिन की तरह वायु में लहराने लगीं। चक्कर करते-करते वे पैर के एक अँगूठे की नोक पर खड़ी हो गईं दूसरे ही क्षण अर्द्ध बृत्ताकार थिरकन लेती हुईं वे सब की सब केन्द्र में आ नाचने लगीं—'हार नृत्य!' प्रत्येक प्रतिमा के हाथ में एक-एक हार था।

दोनों हाथों की तर्जनियों के सहारे हारों को सँभाले वे बिविध बृत्त और मुद्रा दिखाती नाचने लगीं। वह उनकी ओर देखता रहा। उन मूर्तियों में सब से आकर्षक मूर्ति की ओर यह देखने की इच्छा से उसने आँख उठाई कि आया वह भी उन सबके साथ नाच रही है या नहीं पर वह उनमें न दीख पड़ी। धीरे-धीरे अन्य मूर्तियाँ उसी की ओर बढ़ीं और अपनी अपनी मालायें उसके गले मे डाल दीं। वह मालाओं में छिप-सी गई, तब वह भी खड़ी हुई। पतली लम्बी अंगुलियों से मालाओं को उतार कर रख दिया, अँगड़ाई ली। बिजली-सी चमक उठी। हाथ में एक बड़ी सुन्दर माला लटकाय सुकोमल पदों को मन्द गति से उठा कर रखती हुई, कमरे के केन्द्र में आ गई। नाचते-नाचते तन्मय हो उठी। उस तन्मयता में उसने हार युवक के गले में डाल दिया। युवक को जैसे चेतना हो आई। वह अतृप्त भावना से बाँहें फैला कर उस की ओर बढ़ा। जान पड़ा उसके हृदय की पुकार पूरी करने के लिए प्रतिमा उसकी ओर बढ़ रही है। युवक ने अधीर हो अपनी पूरी बाँहें फैला दीं। पर जिस समय उसने उसे अपने अङ्क में भर लेने की चेष्टा की उसकी आँखें खुल गईं।

सामने के पेड़ पर चिड़ियों का चहचहाना उसने सुना। प्रातःकाल होने में कुछ भी देर न थी। उसने सुन रखा था कि प्रातःकाल का देखा स्वप्न शीघ्र फल देता है। तब उसने स्वप्न के सारे दृश्य याद किये। उसने सोचा, क्या उसका वह स्वप्न सच्चा हो सकता है। ऐसा सोचते सोचते वह स्वयं हँस पड़ा! कहने लगा—पुराने जमाने के लोग भी क्या ऊल-जलूल बातें कह गये हैं। सवेरे का स्वप्न सच्चा निकलता है, शीघ्र फल देता है! क्या यह सम्भव है कि मेरा सपना सच्चा हो। कितनी आकर्षक थी वह मनोहर मूर्ति!' ऐसा कहते हुए उसने ऐसा भाव बनाया जैसे वह उस प्रतिमा का स्मरण कर रहा हो। फिर अपने आप कहने लगा—'अरे यह तो और आश्चर्य की बात है! कल शाम को मैंने जिस युवती को देखा था, वही उस मनोहर प्रतिमा के रूप मुझे स्वप्न में मिली थी। भ्रम! नहीं, भ्रम क्यों! वैसी ही नाक, वैसी ही आँख, वैसी ही बाँहें और वैसा ही रूप। हाँ, वेषभूषा में कुछ अन्तर अवश्य था।'

इतने में एक बालक आ बोला। 'सवेरा हो गया उठिए भैया।'

आवाज सुन कर वह उठा। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे मानो वह स्वर्ग से पृथ्वी पर आ गया हो। सामने एक बालक खड़ा था। जिस व्यक्ति के यहाँ ठहरा था, वह उन्हीं का लड़का था। बड़ा हँसमुख बड़ा चञ्चल।

'क्या है नीलू? हाँ, आज उठने में जरा कुछ देर हो गई। यदि तुम न आते तो शायद दोपहर तक सोता ही रहता।'

नीलू ने पूछा—'भैया, आप कल कहाँ गये थे?'

रत्नाकर कुछ कह भी न पाया था कि नीलू के पिता वहाँ आ गये। वे अपने नन्हें से गाँव के मुखिया थे। लोग उन्हें मुखिया काका कहा करते थे। रिश्ते में वे कोठी के मालिक के भाई होते

थे। बोले--'इस देहात में कोठी एक देखने की चीज़ है। कभी-कभी उस ओर चले जाया करो। कोठी का एक बड़ा सुन्दर इतिहास है। अभी हाल ही में राय विनोदविहारी इतनी बड़ी सम्पत्ति छोड़ कर मरे हैं। उनके कोई सगा वारिस न था। रिश्ते की एक लड़की को मरने के पहले गोद ले लिया था। वही आज कल कोठी की मालकिन है।'

'आप उस लड़की को जानते हैं?'

मुखिया ने कहा-- विशेष तो नहीं जानता पर थोड़ा बहुत जानता हूँ। सुना है, वह एक सहृदय लड़की है। बच्चों को खूब प्यार करती है।'

रत्नाकर--'क्या वह उस कोठी में अकेली रहती है?'

'जहाँ तक मुझे मालूम है, वह अकेली नहीं रहती। रिश्तेदारी की कोई औरत आ गई है। फिर दर्जनों नौकर चाकर भी ना हैं। इसके अतिरिक्त साहब लोग भी आते रहते हैं। साहबों की मेमें और उनकी लड़कियाँ भी पहुँची रहती हैं।'

'फिर भी जब बेचारी अकेली होती होगी, तो यह स्मरण कर कि, उसका अपना कहने वाला कोई नहीं है, वह दुखी होती होगी!' रत्नाकर ने कहा।

'वह बिचारी काहे की!--इतना बड़ा राज-पाट जो उसके पास है। जब जो चाहे, खाये-पिये, पहने, सुख करे, बिलसे। लक्ष्मी तो उसके पैरों में लोट रही हैं, और आप उसे बिचारी कहते हैं।'

बिचारी इसलिये कहता हूँ कि अभी उसकी अवस्था ही कितनी है। इतने बड़े इलाके को सँभालना खेल भी तो नहीं है। उसकी बिसात ही अभी क्या है?

छूटते ही मुखिया ने कहा--'मगर बेटा, इलाके का प्रबन्ध तो

कोर्ट की ओर से होता है। कोर्ट मैनेजर यहीं रहते हैं और कोठी के पुराने कारबरदार भी साबिक बदस्तूर काम करते चले जा रहे हैं। उसे स्वयम् थोड़े ही कुछ करना-धरना पड़ता है !'

बड़े को छोटा कहना और छोटे को बड़ा बना देना दुनिया के बायें हाथ का खेल है। पहाड़ कुछ कृष्ण ने ही नहीं उठाया था, हनुमानजी ने भी उठाया था। हनुमान ने तो पहाड़ उठाया ही नहीं बल्कि हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक उसे ढो भी लाये थे, फिर भी बन्दर के बन्दर ही रहे; और कृष्ण, जिन्होंने हजारों गोप-बालकों के साथ मिल कर गोवर्धन उठाया गिरधर बन गये।

उदाहरण के लिए इस सूबे के नाम ले लीजिये। इसका नाम रक्खा गया 'यूनाइटेड प्राविंसेज आफ आगरा एण्ड अवध' पूरे उन्नीस अक्षर का नाम पर दुनिया इसे छोटा करने पर तुल गई और छोटा करके ही रही। उन्नीस अक्षरों में से सत्तरह उड़ा दिये और दो अक्षर यू० पी० रख छोड़ा। इसी यू० पी० के बाँदा जिले में एक बड़े अक्खड़ ठाकुर रहा करते थे। यह रत्नाकर उन्हीं ठाकुर का लड़का था देहाती वातावरण में पला था। स्वच्छन्द वायु ने उसे हृष्ट-पुष्ट बनाया था। उसे माँ का दूध पीने को मिला था। उसका ब्रह्मचर्य कायम था। देहाती शिक्षा समाप्त कर उसने अपने नगर में अङ्गरेजी पढ़ी थी। फिर सूबे के विश्वविद्यालय से उसने ऊँची शिक्षा ग्रहण की थी। उसके पिता धन से निर्धन, पर जाति के धनी थे। बड़े बड़े घरानों से उसके पिता की रोटी बेटी थी। एक इलाकेदार के वे भाई लगते थे; पर थे बड़े अक्खड़। कभी भूल कर भी उसके यहाँ नहीं गये। बेटा भी इस बारे में बाप का अनुयायी था। ऊपर से ऐसा रहता, मानों उसे किसी तरह की कमी ही न थी।

इस सन्तोष का परिणाम भी उस पर अच्छा हुआ था। वह एक आदर्श युवक बन गया। शौक-शृङ्गार के लिए उसके पास न साधन थे न प्रसाधन। फलतः उसकी निष्ठा विद्या से ही सीमित रही। उसने विश्वविद्यालय की ऊँची से ऊँची शिक्षा ग्रहण की और अपने विषय का पण्डित बन गया। पढ़ लिख लेने पर उसके माँ बाप को यह आशा हो चली कि यह कमायेगा और उनकी विपत्तियाँ घटेंगी। अपने माँ बाप की इस आशा को पूरी करने के लिए एक दिन रत्नाकर नौकरी की तलाश में घर से निकल पड़ा। उसके पास इतना भी पैसा न था कि ट्रेन से यात्रा करता! अस्तु पैदल चला। चलते चलते एक गाँव में पहुँचा। लोगों से मालूम हुआ कि वहाँ एक उदार पुरुष रहते हैं। नेउरा यमुना के निकट हरे-भरे खेतों के मैदान में बसा न्यारा सा गाँव है। न बहुत बड़ा है न बहुत छोटा। गाँव के बीच एक ऊँचा मकान है। उसकी दीवारें दूर से चमकती हैं। इसी मकान का मालिक इस गाँव का ठाकुर है लोग उसे मुखिया काका कह कर पुकारते हैं। यह उस समय की कथा है जब रत्नाकर ने प्रथम बार इस गाँव में पैर रखा था।

सन्ध्या का समय था। देहात में राहियों का चलना बन्द हो गया था। रत्नाकर सायंकाल होते उस गाँव में पहुँच गया। गाँव के प्रवेश-मार्ग पर एक झोपड़ी थी। उसने उस व्यक्ति से, जो उस झोपड़ी के दरवाजे पर बैठा था, रात बिताने की आज्ञा माँगी पर उसने कहा—'आप बखरी में चले जाइये, वहाँ आपको भोजन भी मिलेगा और रहने की जगह भी। मेरे पास इस घर को छोड़ कर और घर नहीं है। मैं इसी में रहता हूँ।'

युवक ने कहा—'मुझे न तेरा घर चाहिए न तेरी रोटी। मुझे

रात बिताने के लिए विश्राम का स्थान चाहिए था। खैर यदि तू कहता है तो मैं वहीं जाऊँगा।'

ठाकुर रमेशसिंह (मुखिया काका) पुराने ख्याल के व्यक्ति थे। उनके दरवाजे पर एक बड़ी सी चौपाल थी। उसमें वे अपनी बैठक किया करते थे। देहात में ऐसा कोई न था जो उनका दब-दबा न मानता रहा हो। वे बहुत सुलझे दिमाग के आदमी थे। मुकदमे में ऐसी ऐसी राय देते थे कि उसे सुन कर वर्षों वकालत के सीगे में माथा करने वाले वकील भी ठग से रह जाते थे। वे तलवार की नोक पर किसानों से लगान वसूल करते थे। सरकार के खैर ख्वाह थे इसी लिए मुखिया बना दिये गये थे। उनके परिवार में वह थे, उनकी स्त्री थी और एक लड़का; चौथा कोई न था वे चौपाल में बैठे लोगों से बातें कर रहे थे कि इसी समय रत्नाकर पहुँचा। नये स्थान में जाते समय उसे थोड़ी सी हिचक हुई। वह ठिठक कर थोड़ी दूर पर खड़ा हो गया। जब ठाकुर साहब का ध्यान उसकी ओर उठा तो वे रत्नाकर को देख उसकी सुन्दरता पर वात्सल्य-रस से रीझ उठे। पूछ बैठे—'कहाँ जा रहे हो बेटा ?

'मैं प्रयाग जाना चाहता हूँ। थक गया हूँ। आज की रात यहीं काटना चाहता हूँ।'

उन्होंने पूछा—'बेटा, क्या दूर से आ रहे हो ?'

बाँदा से आ रहा हूँ—

'बाँदा से ! पैदल आ रहे हो ?'

हाँ पैदल ही चल पड़ा। सोचा, देहात की सैर होती चलेगी। पैदल न आता तो आपका दर्शन कैसे होता !'

रमेशसिंह रत्नाकर पर मोहित हो बोले—-एक क्या, दो-चार रात रह सकते हो।' और तब उस गाँव का वातावरण रत्नाकर

को कुछ ऐसा पसन्द आया कि वह एक रात के बदले वहाँ कई रात और दिन रुक गया। ठाकुर और उनकी स्त्री का उसके साथ ऐसा व्यवहार होता; जैसे वह उनका अपना बेटा हो और ठाकुर का लड़का नालू तो जैसे अपने लिए एक जेठा भैया पा गया। रत्नाकर अपना घर और वह उद्देश्य जिसे लेकर वह परदेश चला था, भूल सा गया। वह इस नये घर का हो चला। नालू और रत्नाकर भाई जैसे लगते।

नउरा कस्बे के निकट का गाँव था, जहाँ गाँव का भी सुख था और कस्बे का भी। पास के कस्बे का नाम था गौरीपुर। गौरीपुर में नगर की सभी चीजें मिलती थीं। गौरीपुर में एक बहुत बड़ा कोठा था, जिसके आस पास के सारे गाँव गौरीपुर के इलाके में पड़ते थे। इसी गौरीपुर राज की स्वामिनी सरोजिनी थी। गौरीपुर की कोठी क़स्बे की आबादी से दूर हट कर एक मैदान में बनी थी। कस्बे से एक चौड़ी सी सड़क कोठी तक चली गई थी। यह सड़क टहलने वालों के लिए अच्छी थी। बड़ी शान्ति, बड़ी नीरव! शहर की सड़कों सी उस पर हड़-हड़ न खड़-खड़।

भेंट होने के दूसरे ही दिन सरोजिनी ने एक सुन्दर बहली रत्नाकर के यहाँ भिजवा दी। वह बहली भी कैसी! सतरङ्गी रँगी हुई। मन्दिरनुमा बनावट। गद्दे दार आसन। खूब हल्की। घोड़ों को मात करने वाले ऊँचे कन्धे के दो बैल उसमें जुते थे, श्वेत; जैसे शङ्कर के वाहन। पीठ पर झालरें पड़ी हुईं। गाड़ीवान ने तनिक पीठ पर हाथ फेरा नहीं कि बैल छू-मन्तर हो गये।

रत्नाकर हाथ मुँह धो, जलपान कर रहा था कि सामने से एक बहली आती देखी। वह सोचने लगा, यह किसकी बहली

है, किस लिए आ रही है ? इतने में बहलीवान ने पहुँच कर कहा—'सरकार! कोठी से हुक्म हुआ है कि आपको जङ्गल दिखा लाऊँ!' रत्नाकर थोड़ी देर में तैयार हो कर बहली में बैठ गया। बहली वाले ने बैलों को इशारा किया। बैल गले की घण्टी घनघनाते चल पड़े।

बहली के भीतर कोने में कुछ चीजें देख कर रत्नाकर की उत्सुकता बढ़ी। जब चीजों को गौर से देखा तो मालूम हुआ कि खाने-पीने का सामान है। आसन के नीचे सुराही में जल भरा था। जङ्गल पाँच मील दूर था। बहली पहुँचने में डेढ़ घंटे लगे। एक जगह घनी छाया में पहुँच बहली खड़ी कर दी गई। बैल हटा दिये गये। भीतर बैठने से जो थोड़ी सुस्ती आ गई थी, वह जङ्गल की शुद्ध वायु पाकर मिट गई। वह उतर कर घूमने लगा। घूमते घूमते जङ्गल के भीतर चला गया। कोई चालू रास्ता न मिला, जिधर को तबीयत हुई चल पड़ा। पत्तियों से छन छन कर धूप की पतली रेखायें जमीन को चूम रही थीं। चारों ओर छाया ही छाया थी, मौसम सुहावना था।

वह एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ एक छोटी सी तलैया थी। तलैया में कुइयाँ लगी थी। जल में सेवार भी पड़े थे। कुइयाँ के पत्तों ने जल को ढक सा लिया था। कुइयाँ के फूल बन्द हो चुके थे। जो खिलने और बन्द होने की ताकत खो बैठे थे, मुर्झाये पड़े थे। दोपहरी होने से सूरज की किरणें सीधी पड़ रही थीं। सारा वातावरण शीतल स्निग्ध था। तलैया के चारों ओर ऊँचे-ऊँचे साखू के पेड़ प्रहरी की भाँति खड़े थे। तलैया न बहुत बड़ी थी न छोटी। रही होगी पचास वर्ग गज के घेरे में। स्वाभाविक थी, कृत्रिम नहीं। सेवार के नीचे, पानी स्थिर, स्वच्छ और निर्मल हो रहा था। तलैया के एक कूल पर

एक विशाल बट वृक्ष था, जिसकी जटाएँ न जाने किस समय से ज़मीन को चूम चूम कर उस बट वृक्ष की सैकड़ों संतान पैदा कर अपने जनक की रक्षा में सैनिक की तरह डटी थीं। उसकी सघन छाया को दोपहरी का सूरज भी बधने में अपने को अप्रतिभ-सा पा रहा था।

रत्नाकर का मन उस एकान्त स्थान पर रम गया। वह विचारने लगा—यह जगह उद्यान के लिए बड़ी ही उपयुक्त होगी। तलैया पक्की कर दी जायगी, कूलों पर झाड़ीदार फूल और लताएँ लगा दी जायँगी। चारों ओर एक वृत्ताकार सड़क निकलवा दी जायेगी। सड़क के किनारे पड़ने वाले साखू के वृक्ष उसकी शोभा बढ़ायेंगे और इस बट वृक्ष के नीचे स्थान स्थान पर शिलाएँ रखवा दी जायँगी। पर्यटक, दर्शक और अन्वेषक वहाँ बैठ कर अपनी थकान मिटायेंगे। उद्विग्न-मना विश्रान्ति पायेंगे और चिन्ताकुल नीरवता एवम् शान्ति का अनुभव करेंगे। इस तरह की एक और अनेक बातें सोचते, वह बट वृक्ष की शीतल छाया में, एक जटा से उठँग कर बैठ गया। उसकी आँखें लग गईं।

सहसा उसका ध्यान भङ्ग हुआ। आँखें मलते हुए वह उठ पड़ा। सामने घुड़सवार के वेश में दो महिलायें दीख पड़ीं। दोनों कुछ ऐसे ढंग से खड़ी थीं कि उनका मुँह साफ नहीं दीख रहा था।

रत्नाकर उठ कर तलैया के पास गया और मुँह धोकर उनकी ओर चला। रत्नाकर ने देखा, उनमें से एक तो सरोजिनी है; पर दूसरी को वह न पहचान सका।

कमीज और जोधपुरी ब्रिजिस पहने, बिना किसी आभरण के लम्बी चोटी को कमीज के भीतर डाले, हैट पहने, सरोजिनी

ऐसी जान पड़ती थी जैसे कोई यूरोपियन युवती हो। सरोजिनो की आँखें हैट की आड़ में थीं जिससे रत्नाकर उसकी तिरछी चितवन को न देख सका और न उसे यही मालूम हो पाया कि सरोजिनी की पुतलियाँ किस तेजी से चल रही हैं।

सरोजिनी ने देखा, उसके सामने वह युवक खड़ा है जिसने प्रथम परिचय में ही उस पर अपना प्रभाव डाल दिया है। पक्का रंग, लम्बी बाहें व्यायाम से उभड़ी छाती, ऊँचे कन्धे, सुडौल बनावट, तनिक लम्बा चेहरा, कमल सी विकसित आँखें। सरोजिनी हैट की आड़ से रत्नाकर को निरखती रह गई।

दूसरी स्त्री का ध्यान वट वृक्ष की विशालता की ओर था। वह बोली—'कितना विशाल है यह वृक्ष! यह जङ्गल तो आपके इलाके में पड़ता है?'

'हाँ, यह जङ्गल इसी इलाके में पड़ता है।'

'बड़ी अच्छी जगह है। यहाँ से जाने का मन नहीं होता। और ये युवक कौन हैं? इन्हीं के बारे में आप बातचीत करती आ रही थीं?' इतना कह कर उसने रत्नाकर की ओर देखा।

रत्नाकर ने नमस्कार किया।

युवती ने नमस्कार का उत्तर दिया।

''ये हैं मिस बर्नर!' सरोजिनी बोली—'हमारा इलाका इस समय कोर्ट आफ वार्डस में है। आप मैनेजर मिस्टर बर्नर की पुत्री हैं। मुझसे बड़ा स्नेह रखती हैं। कानवेण्ट में पढ़ती हैं। 'आपका निजी नाम कुमारी रोज है।'

आपका परिचय पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।' रत्नाकर ने कहा।

रोज रत्नाकर की ओर इस भाव से देखने लगीं, जैसे वह सचमुच ऐसी विभूति हों जिसका परिचय पा मनुष्य अपने को

भाग्यशाली समझे—वे प्रकट होकर बोलीं—'आपका क्या नाम है ?'

'मुझे रत्नाकर कहते हैं।'

आपकी शिक्षा कहाँ तक हुई है।

'मैंने इसी वर्ष विश्व विद्यालय से वनस्पति शास्त्र में एम० एस० सी० किया है।'

'आपका निवास स्थान कहाँ हैं ?'

'मेरा घर यहाँ से सौ मील दूर है।'

मिस बर्नर सकुचा गईं। मन ही मन सोचने लगीं—'युवक काफी हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर तथा शिष्ट है। उनकी आँखें बार बार रत्नाकर पर जा रुकतीं। तब वे कुछ गम्भीर सी हो उठीं।

सरोजिनी ने मौन भङ्ग किया। रत्नाकर की ओर देख कर बोली—'आपको आये देर हुई, आपने प्रातःकाल कुछ खाया भी न होगा। मिस रोज को भी भूख लगी होगी। चलिए, कुछ खाना खा लें।'

'खाना ! क्या खूब ! इस जङ्गल में क्या खाइयेगा ! यहाँ तो इन वृक्षों के फूल और पत्तों को छोड़ कर और धरा ही क्या है !'

'तो हर्ज क्या है। हमारे पूर्वजों ने वर्षों इन्हीं पर जीवन बिताया है। संसार के लिये एक से एक अनुभूतियाँ इन्हीं को खा और पहन कर अर्पित कीं है, और वे अनुभूतियाँ भी कैसी जिनका आज तक कोई मूल्य भी न आँक सका है।'

सो तो सच है। मगर वह युग और था। आज कल पेड़ की छाल पहनने और फूल पत्तियाँ खाकर पचाने की कौन कहे, लोगों को छूने से भी घृणा है। सचमुच वह युग मानवजाति के जीवन का प्यारा युग था। न आज के से आडम्बर थे, न आज का सा कृत्रिम जीवन। सब लोग स्वतंत्र वायु-मंडल में रहते थे।

प्रकृति सेवन करते थे। मिस सरोजिनी, मेरे माता पिता, अपने भारतीय धर्म से अलग अवश्य हैं, पर मेरा हृदय अब भी भारतीय है। मैं उन पूर्वजों को ही अपना पूर्वज समझती हूँ।'

रत्नाकर ने देखा, मिस बर्नर उस ढंग की क्रिश्चियन नहीं हैं जो 'तुम' को 'टुम' कहती हों और अपने को साहब जाति की मानती हों। रत्नाकर मिस रोज की उपरोक्त बातें सुन उसकी ओर आकृष्ट हो चला।

सरोजिनी ने तब तक बहली से खाना मँगवा लिया था। सरोजिनी पत्तियाँ तोड़ने का प्रयत्न करने लगी। रत्नाकर ने आगे बढ़ कर सरोजिनी से कहा—'आप बैठिए, मैं पत्ते लाता हूँ।'

'बैठिए!' कितना सुन्दर शब्द है। 'बैठिए!' उसे ऐसा जान पड़ा मानो उस 'बैठिए' में पूरा अपनत्व भरा पड़ा है।

सरोजिनी ठहर गई। रत्नाकर ढेर से पत्ते ले आया। उन्हीं पत्तों पर खाना रखा गया।

खाना खा लेने पर मिस बर्नर बोली—'आज का दिन बड़ा सुन्दर बीता। मैंने तो इस स्थान को देखा भी न था। जी चाहता है, फिर फिर आऊँ।'

'अवश्य आना। और अब तो यहाँ आना जाना लगा ही रहेगा। यदि आप आराम करना चाहें तो बहली के भीतर चली जायँ।

रोज इच्छा न रहते हुए भी बहली की ओर चल पड़ी।

इधर रत्नाकर और सरोजिनी थोड़ी देर तक इधर उधर की बातें करते हुए जङ्गल के भीतर चल पड़े। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते, त्यों त्यों जङ्गल खूब घना होता जाता था। घने घने वृक्षों की पत्तियाँ काली घटा सी दीख पड़ती थीं। आगे एक चौड़ा नाला बह रहा था। नाले के अगल बगल के वृक्ष खूब लहलहा रहे थे।

जङ्गल के उस घने भाग में सरोजिनी इस तरह चल रही थी मानो वह उस स्थान से पूर्ण परिचित हो। पर रत्नाकर के पाँव ठिठक ठिठक कर पड़ रहे थे।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर रत्नाकर और सरोजिनी दोनों अगल बगल चलने लगे। उस समय सरोजिनी को रोमाञ्च-सा हो आया। वह रह रह कर रत्नाकर की आँखें बचा, उसकी ओर देख लेती। रत्नाकर कुछ सङ्कोच कर रहा था। दोनों नाले के किनारे पहुँच गये। एकाएक दो चमकती हुई चीजें दिखाई पड़ीं। सरोजिनी सहसा एक कदम पीछे हट गई। उसे एकाएक पीछे हटते देख रत्नाकर कुछ समझ न पाया। और जब उसने सामने आँख उठाई तो देखा कुछ दूरी पर एक बाघ खड़ा है। मालूम होता था वह पानी पीकर लौटने की तैयारी में है। रत्नाकर के पैर तले की जमीन खिसक गई। काटो तो खून नहीं। वह अकेला होता तो जैसे तैसे किसी पेड़ पर चढ़ कर जान भी बचाता। लेकिन उस समय उसके साथ एक स्त्री थी; और वह भी साधारण स्त्री नहीं, एक बड़े इलाके की मालकिन। तब वह सरोजिनी को पीछे खींच कर स्वयम् आगे हो गया।

बाघ काफी दूरी पर था जरूर, पर उसकी खूंख्वार आँखें दोनों पर आ जमीं। रत्नाकर धीरे धीरे पीछे हटने लगा। बाघ जहाँ का तहाँ खड़ा उनकी ओर देख रहा था। रत्नाकर हटते-हटते एक बड़े से पेड़ के पास पहुंच गया। सरोजिनी की ओर बिना देखे ही उसने कहा—'तुम इसी पेड़ पर जल्दी से चढ़ जाओ!'

सरोजनी काँपती आवाज में बोली—'यह मुझसे न होगा। आपको बाघ के मुँह में छोड़ कर मुझसे पेड़ पर न चढ़ा जायगा।'

'आप मेरा कहना मानिए। इस तरह हममें से एक तो निरा-

पद स्थान में पहुँच जायगा। और आपका निरापद स्थान में पहुँच जाना बड़ा आवश्यक है। ऐसा कह कर वह बाघ की हर-कत देखने लगा।

इस समय बाघ ने गरदन थोड़ी सी नीची कर ली थी। वह घबरा कर बोल पड़ा—'सरोजिनी, मुझ पर रहम करो। बाघ झपटने की तैयारी में है। यदि बाघ ने आक्रमण कर दिया और तुम्हें चोट आ गई तो मैं कहीं का न रहूँगा!'

'और आप घायल हो गये तो मेरी.........!' सरोजिनी कुछ आगे कहना ही चाहती थी कि रत्नाकर ने सरोजिनी को झपट कर उठा लिया। ऊपर की ओर उछाल कर बोला—'जल्दी से उस टहनी को पकड़ लो। रत्नाकर ने उसे इस तरह डांट कर कहा कि वह आगे कुछ भी न कह सकी। हाथ की पास की डाल को पकड़ लिया। फिर भी जहां तक पहुँच चुकी थी उससे ऊँचे न जा सकी। वहीं दुबक कर बैठी बैठी सजल नेत्रों से रत्नाकर की ओर देखने लगी।

रत्नाकर को जब मालूम हो गया कि सरोजिनी निरापद स्थान में पहुंच गई है, तब वह मन ही मन प्रसन्न हुआ। अब उसे अपने को बचाने की सूझी। रत्नाकर के लिए एक एक क्षण काल के समान बीत रहा था कि बाघ जोरों से तपड़पता हुआ उछला।

बाघ को उछलते देख सरोजिनी चीख पड़ी। रत्नाकर, बाघ की आँख बचाकर झट बग़ल हो गया। रत्नाकर ठीक पेड़ के तने से सटकर खड़ा था। रत्नाकर का हटना था कि बाघ पेड़ से जा टकराया। बड़ी जोर से गरजा, फिर दूसरे क्षण चारों खाने चित्त पड़ गया। उधर पेड़ से थोड़ी दूरी पर रत्नाकर बेहोश लेटा था।

जिन लोगों को शिकार का थोड़ा भी अनुभव है, वे यह

जानते होंगे कि घायल बाघ कितने खतरनाक हो जाते हैं। बाघ लड़खड़ाता हुआ उठा। इधर-उधर देखने लगा मानों वह अपने शिकार को खोज रहा हो। एकाएक उसकी आँखें रत्नाकर पर जा पड़ी। तब दूने वेग से उस ओर झपटा। सरोजिनी की आँखें रत्नाकर पर ही लगी थीं।

बाघ को दुबारा झपटते देख उसका धैर्य जाता रहा। वह अपने आपको भूल-सी गई। वह यह भी भूल गई कि वह जो कुछ करने जा रही है उसका परिणाम क्या होगा। वह अपनी तमाम ताक़त लगा कर चीखती हुई कूद पड़ी। झपटता हुआ बाघ रुक गया। उसने मुड़ कर पीछे देखा। बाघ रत्नाकर की ओर न जाकर सरोजिनी की ओर झपटा।

रत्नाकर सरोजिनी की चीख पर ही जाग पड़ा था। बाघ को उसकी ओर लपकता देखा तो सन्न रह गया। सरोजिनी को काल के मुँह में पड़ा देख उसका सारा पुरुषत्व उबल पड़ा। अपनी पूरी ताक़त लगा मुड़ते हुए बाघ की पिछली टाँगें पकड़ पीछे को खींचने लगा। घायल बाघ न आगे जा सका न पीछे। रत्नाकर ने चाहा कि बाघ को पीछे घसीट लूँ पर सफल न हो सका और उसका हाथ फिसल गया। पूँछ छूट गई।

पूँछ का छूटना था कि बाघ फिर जोर से तड़पा। अब की बार उसने पीछे मुड़कर देखा। उसकी आँखों से मालुम हो रहा था मानो वह अपने उस शत्रु को खोज रहा है जिसने उसकी पूँछ पकड़ने की हिम्मत की थी।

रत्नाकर संयोग से एक गड्ढे में गिर पड़ा था। बड़ा अजीब गड्ढा था। पास के गाँव के कुम्हार उसमें से मिट्टी ले जाया करते थे। उन्होंने उस गड्ढे का मुँह तो सकरा कर रक्खा था, पर भीतर-भीतर उसे काफी पोला कर दिया था।

गड्ढे के मुँह पर की मिट्टी एक साधारण-सी छत की तरह टँगी थी। बाघ भी गड्ढे की ही ओर बढ़ा। ऐसा मालूम होता था जैसे मानों उसने अपने शिकार को उस गड्ढे में छिपते हुए देख लिया था। वह गढ़े में उतरने लगा। जिस ओर से होकर वह उतर रहा था, उस ओर की मिट्टी उसके बोझ से धसक गई और वह मिट्टी लिये गढ़े में गिर पड़ा। उसका मुँह औंध गया। रत्नाकर गड्ढे के भीतर पड़ा-पड़ा मौत की घड़ियाँ गिन रहा था। उसे विश्वास हो गया था कि उसके जीवन की लीला शीघ्र ही समाप्त हो जायगी। गड्ढे की ऊपरी सतह की मिट्टी गिरते देख उसके सामने अँधेरा जैसा छा गया। बड़ी देर बाद जब उसकी आँख खुली तो उसने देखा कि कुछ क्षण पहले उसे यमलोक पहुंचाने वाला बाघ, पचासों मन मिट्टी के ढेर के नीचे पड़ा मौत की घड़ियां गिन रहा है। उसकी हत्यारी आँखें तब भी गड्ढे के भीतर रोशनी फैला रही थीं। बाघ उठने की कोशिश कर रहा था, पर हर बार असफल हो रहा था। रत्नाकर की जान में जान आई और वह लड़खड़ाता हुआ गड्ढे के बाहर निकला।

यद्यपि बाघ रत्नाकर पर चोट न कर सका था, फिर भी घबराहट और गड्ढे में गिरने से उसे काफी धक्का पहुँचा था। उसके पैर लड़खड़ाने लगे, वह चल भी न पाता था। किसी तरह वह लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ा। सामने सरोजिनी बेहोश पड़ी थी। वह छूटते ही सरोजिनी की ओर झपटा। सरोजिनी के पास बैठ उसने उसका सिर उठा कर अपनी गोद में रख लिया।

बड़ी देर तक सहलाने के बाद सरोजिनी की आँखें खुलीं। रत्नाकर ने देखा, सरोजिनी काँप रही है। तब रत्नाकर ने कहा—'घबड़ाइए नहीं, अब हम दोनों सुरक्षित हैं।'

आमना सामना

रोज ने, रत्नाकर और सरोज दोनों को साथ-साथ आमन्त्रित किया। सरोज रोज के यहां रत्नाकर के साथ न आ सकी। पर वह यह भी नहीं चहती थी कि रत्नाकर अकेले रोज के यहाँ जाय, पर वह बेबस थी क्योंकि उसकी मौसी लक्ष्मीबाई, काशी में सख्त बीमार थीं। लक्ष्मीबाई को सान्त्वना देने के लिए सरोज को वहाँ जाना ही पड़ा।

वह चमेली और एक नौकर को लेकर काशी के लिए चल पड़ी। आज उसका मन कुछ-कुछ भारी-सा लग रह था। उसे ऐसा मालूम हो रहा था जैसे वह कुछ खो बैठी है या खो बैठेगी।

काशी-स्टेशन पर उतर कर एक टांगा किया। खोजते-खोजते अपनी मौसी के घर पहुँची।

लक्ष्मीदेवी का घर एक अत्यन्त घने बसे मुहल्ले में था। गलियों में एक दोमहले पर वे रहती थीं। न उनके आगे कोई था, न पीछे। पड़ोस की एक मालिन की लड़की कभी-कभी आ जाया करती थी। जिस समय सरोजिनी पहुँची, घर में कोई नहीं था।

सारा स्थान शान्त था। और उस शान्ति में एक अजीब भयङ्करता नाच रही थी। जैसे किसी भारी आँधी के आने के पूर्व

शान्ति हो जाती है, उस भयङ्करता का अनुभव कर सरोजिनी एकदम अज्ञात आशङ्का से काँप उठी।

'चमेली' मैं यहीं बैठती हूँ, तुम तनिक देखो तो मौसी कहाँ है ?'—ऐसा कहते वह एक स्थान पर बैठ गई। थोड़ी देर में चमेली आँखों में आँसू लिये, सरोज के सामने आ खड़ी हुई।

सरोजिनी चमेली का चेहरा देखकर और भी गम्भीर हो उठी। बड़ी देर बाद बोली—'कैसी हैं मौसी !'

चमेली बिना कुछ कहे सरोजिनी को उस कमरे में ले गई जहाँ लक्ष्मीदेवी बिस्तर से सट कर काँटा हो रही थी।

सरोजिनी ने अपनी कृश काय मौसी को देखा और तब वह अपने मनोवेग को रोक न सकी। व्याकुल हो, मौसी से लिपट कर सिसकियाँ लेनी लगीं।

धीमे स्वर में लक्ष्मी ने पूछा—'कौन है ?'

'सरोजिनी'

'सरोजिनी ! मेरी बेटी ! आह ! उठ भी तो नहीं पाती ! बेटी ! तुमने आज बड़ी कृपा दिखाई ! मेरी अन्तिम घड़ी आ पहुँची है, यहाँ मेरा अपना कोई भी नहीं है। तू आ गई ! अब मैं सन्तोष से मर सकूँगी।'

सिसकते हुए सरोजिनी बोली—'मौसी, ऐसा न कहो ! मैं तुम्हारे बिना कैसे रहूँगी। मेरा ही कौन बैठा है ! एक तुम्हीं तो अपनी सगी थीं।'

'पर बेटी ! इस दुनिया में सभी को एक न एक दिन यहाँ से जाना है। इसलिए 'शुभस्य शीघ्रम्' ही ठीक है। वियोग से घबराना उचित नहीं। वीर की तरह वियोग को सहना चाहिए। वास्तविक वीर वही है जो वियोग की चोट सह कर भी नहीं घबराता। तलवार की चोट कोई चोट नहीं।'

'मौसी पर क्या तुम समझती हो, वियोग की चोट मैंने कम सही है। ऐसा कौन सा वियोग है जिसका दुख मुझे न सहना पड़ा हो।'

मौसी कुछ बोलना ही चाहती थी कि चमेली ने रोक दिया—'मौसी अधिक न बोलो, थक जाओगी।'

सरोजनी उठी, उसने मौसी के अङ्ग पर हाथ फेरा, उनका सिर सहलाया। मौसी अपलक नेत्रों से उसे देखती रहीं। थोड़ी देर तक वहाँ निस्तब्धता का साम्राज्य छाया रहा। फिर सँभल कर लक्ष्मीदेवी बोलने को उद्यत हुई।

'नहीं !'—मुँह पर हाथ रखते हुए सरोजनी ने कहा—'मौसी, बोलने की कोशिश न करो।'

'तुम ठीक कहती हो बेटी, पर इस समय कुछ बोल लेना मेरे लिये आवश्यकीय है। सम्भव है फिर न बोल सकूँ। बोलना भी एक शक्ति है। इस समय सारी शक्तियाँ जवाब दे रहीं हैं। उठने-बैठने की शक्ति पहले से ही जवाब दे चुकी है। रह गई है। थोड़ी-सी बोलने की शक्ति; कुछ ही घड़ी में यह शक्ति भी जवाब दे बैठेगी तब केवल पछताना ही हाथ रह जायगा। फिर उस शक्ति का उपभोग क्यों न कर लूँ।

'हर व्यक्ति को मरना है, और हर व्यक्ति मरेगा, यह एक सनातन नियम है। उसी नियम के अनुसार मुझे भी मरना है। पर कितने भाग्यवान् हैं वे प्राणी जो सन्तोष के साथ मरते हैं। एक मैं हूँ अभागिनी ! आज मेरा कोई भी नहीं है। दूर या निकट के रिश्ते में केवल तुम हो; पर तुम भी आज पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो। तुम्हारी खाली माँग देखकर आज मुझे जो असन्तोष है, वह मेरे साथ जायगा। यही नहीं, वरन् तुम्हारे

आस-पास एक षड्यन्त्रमय वातावरण भी तैयार हो गया है। तुम्हारा मुन्शी और तुम्हारे मैनेजर ....आह!'

'मौसी, तुम क्या कह रही हो! मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। खैर जाने दो। जो कुछ होना होगा, होगा। इस समय तुम किसी भी प्रकार की चिन्ता अपने मन में न ले आओ। उस परमात्मा से नेह लगाओ जो सबका रक्षक है और जिसे अन्त समय सब को स्मरण करना चाहिये।'

'बेटी, तुम सच कहती हो। पर दो बातें मुझे तुमसे कहनी थीं, इसी लिए तुम्हें बुलवाया था। यदि मैं उन बातों को मन में लिये चली जाऊँगी, तो मेरी आत्मा को कभी शान्ति न मिलेगी।'

काँपती हुई आवाज़ में सरोजिनी बोली--'मौसी, मुझे भयभीत न करो। ईश्वर तुम्हें ज़िन्दगी दे, तुम जीवित रहो, यही मैं चाहती हूँ।'

'पर बेटी'—लड़खड़ाती जबान में लक्ष्मीदेवी बोली—मेरी जिन्दगी ही अब शेष कहाँ है। मैं अब यहाँ से जा रही हूँ; यह एक कटु सत्य है। मुझे बहुत कुछ कहना था; पर तुम देर से आई हो। मुझसे बोला भी नहीं जाता। उस मुन्शी से सावधान रहना।'

'इस सत्य को कुछ दिन के लिए और छिपा रखो। मेरी पिछली चोटों को अपने शब्दों से हरा न करो। मुझे विश्वास नहीं होता कि भगवान इतना निर्दयी हो जायगा कि वह तुम्हें भी मुझसे छीन लेगा। तुम! उफ़ यह कभी भी न होगा। तुम्हें अभी मेरे लिए जीवित रहना होगा। मैं अभी डाक्टर बुलानेजाती हूँ; तुम्हें अपने शरीर का रक्त देकर भी बचाऊँगी। एक बार काल से भी लड़ूंगी!'—ऐसा कहते मौसी को छोड़ कर सरोजिनी बाहर निकल गई।

मौसी का क्षीण स्वर उसे रोक न सका। दो-ढाई घण्टे में काशी के बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्य और हकीम उस नन्हें से मकान में भर उठे। कोई यह न समझे कि यह गरीबिनी शायद फ़ीस न दे सके; सरोजिना फीस पेशगी देती और अपना पता बताती शहर के सारे चिकित्सकों को छान आई।

वह नन्हा-सा घर डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों से भर उठा। सब ने अपनी-अपनी बुद्धि आजमाई। सब ने अपनी-अपनी पोटियाँ खोल दवाइयाँ दीं; लेकिन मरीज़ की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ।

ज्यों-ज्यों रात्रि का आगमन होने लगा, त्यों-त्यों मौसी के चेहरे का प्रकाश क्षीण होने लगा। रात्रि भयकर दीखने लगी। चिकित्सक अपना-अपना अभिनय कर चलते बने।' चमेली और सरोजिनी चारपाई की पाटियाँ पकड़े सिर नीचा किये बैठी थीं। लक्ष्मीदेवी ने तीक्ष्ण स्वर में पुकारा—'पानी !' सरोजिनी ने चम्मच से पानी को गले के नीचे उतारना चाहा पर पानी ऊपर ही रह गया। नीचे न जा सका। 'पड़ोस के वैद्य जी को बुलाओ !'—सरोजिनी ने घबड़ा कर कहा।

पड़ोस में एक वृद्ध वैद्य जी रहते थे। चमेली उन्हें बुला लाई। वैद्य ने रोगी को ग़ौर से देखा और तब उनका वृद्ध चेहरा और भी वृद्धत्व लिये लटक गया। वे बोले—बेटी ! यह धीरज का समय है !'—इतना कह कर वे बाहर चले गये। मौसी ने एक हिचकी ली फिर उसकी आँखें खुली ही रह गईं।

अपना साथी या अपने को प्यार करने वाला अथवा वह जिसे हमने अपने जीवन में प्यार की वस्तु समझा, जिसे जीवन का आधार जाना, जिसे अपना सगा कहा, ऐसा व्यक्ति जब मृत्यु-शय्या पर जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा हो, मृत्यु के

कष्ट से छटपटा रहा हो, उर्ध्व-श्वास ले रहा हो, उसकी आँखे बेबसी में अपने प्रिय-परिजनों को अन्तिम बार देख रही हों; और आप सामने खड़े हों, कुछ भी न कर पा रहें हों, उसके दर्द को तनिक भी कम न कर सक रहें हों, जिसके लिए रक्त बहाने का दम भरते थे, उसे इस तरह बिछुड़ते देख, उसकी भयंकर वेदना को समझ कर भी अपनी अशक्तता का अनुभव कर रहे हों, ऐसे समय हृदय पर क्या बीतती है, इसे एक भुक्तभोगी ही बता सकता है। क्या दुनिया में ऐसा भी कोई पत्थर हृदय व्यक्ति है जो स्वयम् उस समय मृत्यु की कामना न कर उठे! उस बिछुड़ने वाले साथी का साथ देने के लिये बिना जल की मछली की तरह अथवा हलाल किये जाने वाले पशु की तरह न छटपटा उठे! पर काल दुखिया की कोई पुकार नहीं सुनता। मनुष्य को अपनी कमजोरियों का जैसा नग्न परिचय उस समय मिलता है वैसा क्या और समय भी मिल सकता है? हवा में उड़ने वाला, बेतार के तार से बोलने वाला, लाखों मन के बोझ अपने बुद्धि रूपी इंजन से हजारों मील तक ढो ले जाने वाला बलशाली मनुष्य उस समय अपने को कितना लाचार पाता है, इसे देख कर हमें उन मनुष्यों पर दया आती है जो दम्भ, अभिमान, शान, दर्प और मद में आकर न जाने क्या-क्या बक जाते हैं!

जाने वाला चला जाता है और पीछे रह जानेवाले बेवसी हाथ पर हाथ रखे रह जाते हैं। प्यारा पुत्र हृदय की रानी, देवता तुल्य पिता, सगा सहोदर, जन्म देने वाली माँ, मर मिटने वाला मित्र, रक्षक किसका कौन नहीं छूटा, पर कोई अपने इन प्यारों को न रोक सका। पीछे रोने को बैठा रहा। वर्षों आँसू बहाये, शोक के वस्त्र धारण किये, शरीर को सुखा डाला, पर स्वप्न तक में वियोगी की छाया न दीख पड़ी।

एक बात और। जो पीछे रह गये, वे तो यह व्यक्त भी कर लेते हैं कि उन्होंने अमुक वियोगी को प्यार किया, पर क्या कोई यह भी बता सकता है कि मरने वाले के हृदय में, पीछे छूट जानेवालों के लिए कितना प्यार भरा था! काश, मर जाने पर एक बार फिर से उसकी धमनियों में रक्त का सञ्चार हो उठता उन सटे ओठों में फिर से एक बार गति आ जाती, उन पथराई काली पुतलियों में एक बार फिर से चञ्चलता आ पाती! पर नहीं; आज तक जो बात नहीं हुई है वह अब क्यों होने लगी। न जाने कितना प्यार समेटे, कितनी वेदना छिपाये, कितना उत्पीड़न लिये, कितनी बेचैनी मन में भरे जाने वाला चला जाता है! जीवन में जिन्हें सब से अधिक प्यार की वस्तु समझा, जिसके लिए रात-रात और दिन-दिन आराम नहीं किया, उससे बरबस अलग होने में उसे कितनी वेदना हुई होगी, उसे कौन बताये, पर मरने वालों के लिए तब भी इतना तो अच्छा ही कहा जायगा कि वह इस माया-बन्धन से कि मुक्त हो गया; वह ऐसी जगह चला गया जहाँ न प्यार है, न दुलार; न वियोग है न संयोग। कुछ भी नहीं है और यदि कुछ है तो वह केवल एक कल्पना! होने को स्वर्ग है, बेहिश्त है, नरक है, दोजख है, हेल है, हैविन है! पर कहाँ है, कितनी दूर है, यह किसे ज्ञात है! जो पीछे रह जाते हैं; जिनके प्यार और पुचकार की वस्तु छीन ली गई है! क्या आप उन्हें तब भी मनुष्य कहेंगे! वे सचमुच मनुष्य नहीं, पत्थर हैं। पर ऐसा पत्थर, जो चन्द्र-ज्योत्स्ना, खिली फुलवारी, मन्द समीर आदि को देख अपने आप पिघलता रहता है! उसका दिल दिल नहीं रह जाता। दुनिया में सबसे कड़ी चोट जो कभी अच्छी न हो, वह घाव जो कभी भरे नहीं, वह टूट जो कभी जुटे नहीं, वियोग है! उफ, इस वियोग से बढ़कर भी क्या कोई

दर्द है ! क्या इससे भी अधिक पीड़ा देने वाली कोई चोट है ? यह दर्द उस फोड़े सा है जो पक जाने पर नहीं फूटता; उस चोट सा है जो दब उठने पर भी रक्त-स्राव नहीं करता और जब-जब पुरवाई बह उठती है तब तक करक उठता है।

लोग कहते हैं, अमुक व्यक्ति बड़ा सुखी है, पर क्या यह सच है ! कभी नहीं !! यदि वह मनुष्य है तो अच्छी तरह समझ लीजिये वह कभी सुखी नहीं हो सकता। मनुष्य और सुख ये दो परस्पर विरोधी शब्द हैं ! पत्थर ही सुखी हो सकता है। जिसके पास हृदय है, सोचने की शक्ति है, समझने का ज्ञान है, अनुभव करने की बान है, वह भला कैसे सुखी हो सकता है। जहाँ का नियम ही वियोग है, जहाँ से जाने के लिये ही मनुष्य आता है, जहाँ मरने के लिये ही जन्म लिया जाता है, जहाँ मरण ही ध्रुव सत्य है। वहाँ सुख कैसा; वहाँ आनन्द कैसा ? जहाँ-लाखों की सम्पत्ति, सुख, शृंगार के साधन, संसार मात्र की वैभव, विशा-लता, वियोग में भस्मसात् हो जाते हैं वहाँ मनुष्य उन वियोगों को भूल कर नक़ली सुखी बनने का स्वाँग करता है। यह सुख माखौल नहीं तो और क्या है ?

पुत्र खोकर, पुत्र की कामना की जाती है, स्त्री खोकर स्त्री पाने का उपक्रम किया जाता है, पति छूट जाने पर (उन देशों में जहाँ समाज के नियम हैं) दूसरा पति किया जाता है। कलेजे पर दुःख का मनों बोझ रखे, बिछुड़े साथियों की प्यारी से प्यारी स्मृति को गह्वर में डाल, आदमी फिर इस दुनिया में रत हो जाता है। एक-दो नहीं, इसके लाखों उदाहरण हैं—हर एक व्यक्ति इसका उदाहरण है।

इसी तरह यदि हृदय और बुद्धि रखती हुई भी सरोजिनी ने माता, पिता और मौसी-सी अन्तिम सगी रिश्तेदार के वियोग

को भूल कर फिर से जीने का नाटक रचा तो हम उसकी आलोचना कैसे हों।

उसका पीला चेहरा, उसकी भीतर घुसी आँखें, उसके रुक्ष केश उसके मनोभावों को आप ही आप व्यक्त करते हैं। सरोजिनी बैठी-बैठी अश्रुपात कर रही थी; उसी समय पड़ोस वाले वैद्य फिर आये। बोले—'बेटी' तुम समझती हो, केवल तुम्हीं दुखी हो! सामने वाली इसी हवेली की कहानी तुम्हें सुनाता हूँ!

यह राय की हवेली बोली जाती है। पूरे अस्सी वर्ष से तो मैं ही देख रहा हूँ। इस घर में मर्द कभी पचीस पार नहीं करने पाते। चढ़ती जवानी में पहुंचे नहीं कि काल धर दबाता है, और तब एक जवान-सी विधवा छोड़ कर वे चलते बनते हैं। बाबू काशीनाथ छब्बीस वर्ष की आयु में मरे। कितने सुन्दर थे वे! मैं उस समय सत्तरह वर्ष का था। उनकी बहू तो मानों परी थीं। चलतीं थीं तो ज़मीन की शोभा बढ़ जाती थी। उन्नीस वर्ष की उम्र में विधवा हुईं। गोदी में छः महीने का एक बच्चा था। विधवा होने पर कुएँ में डूब कर मरने जा रहीं थी, लोगों ने धरा-पकड़ा, समझाया-बुझाया। किसी तरह उन्हें धीरज हुआ; फिर उस लड़के का लालन-पालन करने लगीं। लड़का अठारह वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुंचते पूरा जवान हो गया। अपने बाप जैसा मालूम होता था; मानों बाबू काशीनाथ स्वयम् उतर आये हों। बड़े धूम-धाम से लाहौर में शादी हुई। सोने जैसी बहू आई। जिस घर में बाबू काशीनाथ की मत्यु का शोक मनाया गया था उसी घरमें उस दिन नाच गाना हुआ। बिरादरी की छोटीबड़ी लड़कियोंका नाचना गाना देखकर यह न मालूम होता था कि उस घर में कभी वज्र-सा दुख पड़ा होगा। ख़ुशी-ख़ुशी में साल बीत गया। और एक दिन सुना उस युवककी तबियत

ख़राब है ! क्षण भर में हवेली के सामने मोटरों, बग्घियों का ताँता बँध गया। बड़े-बड़े वैद्य, डाक्टर हकीम आ गये। कुल छः घंटे बीमारी रही। सुना, उसी छः घंटे में तेरह हजार रुपए दवाई में लग गये; लेकिन क्रूर काल के अट्टहास को वे तेरह हजार बन्द न कर सके और शाम होते होते उस हवेली का चिराग बुझ गया !

माँ विधवा, बुआ विधवा, बहू विधवा ! और वह बहू भी केवल सत्तरह वर्ष की ! अभी हाथ की मेंहदी भी न छूटी थी उसका वह सिसकना, उसका वह हाय मारना आज भी मुझे याद है ! वह भी दिन देखा !

बाबू हीरालाल के मरने पर तीन माह बाद, बीबी को लड़का हुआ, कुछ आँसू पुछे। धीरे-धीरे लोग शोक भूलने लगे। उस लड़के की पढ़ाई-लिखाई में लोग लग गये। धीरे-धीरे वह बालक बड़ा हुआ नाम था पन्ना लाल। बड़ा सुन्दर। ऐसा लड़का तो मैंने कभी देखा ही नहीं। पन्ना लाल की शादी लखनऊ में हुई। पन्नालाल की माँ और पर-माँ दोनों अपनी अपनी विपदा भूल गईं। बाबू पन्नालाल का बड़ा नाम हो चला। कई पुश्तों की बिगड़ी हुई गृहस्थी वे सँभाल ले चले। उनके चार लड़कियाँ हुईं। अब माँ और पर मां को चिन्ता हुई पौत्र के लिये। पूजा-पाठ आरम्भ हुआ। कौन सा ऐसा महीना जाता जिसमें दस-बीस गरीब दुखिया न खिलाये जाते पण्डित पूजा न करते। इतना सब कुछ होने पर भी पांचवीं बार बेटी ही हुई।

बाबू पन्नालाल का मन कुछ-कुछ बैठने सा लगा। वे कुछ उदास से भी रहने लगे थे। अभी दो महीने भी नहीं हुये कि एकाएक इस घर पर आखिरी वज्र-पात हुआ। बाबू पन्नालाल मन बहलाने काश्मीर गये थे, वहीं उनका शरीरान्त हो गया।

मरते समय उनकी दादी, मां और बहू उन्हें देख भी न पाईं। दस दिन बाद तो राख-पत्ती आई। इनकी बहू को उस समय पेट था। लोगों ने सोचा था कि शायद भगवान आसू पोंछ दे; पर भगवान को इसकी क्या पड़ी है जो वैसा करे। फिर एक लड़की हुई। दादी विधवा, मां विधवा, स्त्री विधवा, पांच-पांच लड़कियां! अब उनको कौन ढाढ़स दे, उनके दुख को कौन समझे; और कौन उन्हें समझाये! बेटी, तुम्हीं बताओ, उन अभागिनियों को क्या जीना चाहिये! पर नहीं; व भी जी रही हैं। वे भी इस संसार में रहती हैं। तुम्हें दुखी न होना चाहिये। तुम इस समय एक बड़े इलाक़े की स्वामिनी हो गई हो। यह तो कर्म-क्षेत्र है। यहां एक मरता है तो एक उठता है। उठो, शोक न करो। शीघ्र इलाक़े चली जाओ। न जाने वहां क्या बनता और बिगड़ता होगा। शोक में अपना समय नष्ट न करो।'

'पण्डित जी, आपके दो शब्दों से मुझे काफी धैर्य हुआ है। पर मेरा ख़्याल है कि अभी मुझे और भी दुख उठाना पड़ेगा।'

'संभव है, तुम्हें और भी दुख उठाना पड़े। पर यदि साहस से काम लोगी तो जीवित रह सकोगी। आशा है इस गुरु-मन्त्र को कभी न भूलोगी।'

दूसरे दिन सरोजिनी और चमेली गौरीपुर के लिये रवाना हो गईं। अब तक सरोजिनी का ध्यान अपनी मौसी पर था, पर गौरीपुर की ओर मुँह होते ही दूसरी दूसरी बातें उसे याद पड़ने लगीं। 'मुन्शी बड़ा ही खतरनाक आदमी है। उससे सावधान रहना!' ये शब्द लक्ष्मीदेवी ने मरती बार कहे थे। सरोजिनी उस पहेली को सुलझा नहीं पाई थी कि उसे स्मरण हो आया रोज और रत्नाकर का एक साथ भोजन करना। वह व्यथित-सी हो उठी। उसमें एक अजीब बेचैनी आ गई।

इधर मुंशी हरचरणलाल जो इलाके के पुराने कारकुन थे तथा मिस्टर बर्नर में कुछ और ही बात हो रही थी। जब सरोजिनी काशी चली गई थी तभी उन दोनों व्यक्तियों ने आगे का कार्यक्रम पक्का कर लिया था; और यह तय हो गया था कि अब कायवाही करने में विलम्ब न करना चाहिए।

सरोजिनी देवी गौरीपुर पहुंच गई। अब मुंशीजी का कार्य-क्रम आरम्भ हुआ।

मुन्शी हरचरणलाल ने अपने पुत्र रामकिशोर से मिस्टर बर्नर के साथ हुई सारी बातें ब्योरेवार समझा दीं। उन बातों का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा। दूसरे ही दिन वे कुछ ऐसे कागज-पत्र, जिस पर सरोजिनी का हस्ताक्षर होना था, लिये सरोजिनी के पास पहुँचे। प्रातःकाल का समय था। रामकिशोर कोठी को लालच भरी निगाह से देखने लगे। उन्होंने सोचा, मेरे पिता जो रचना रच रहे हैं यदि वह सफल हो गई तो यह कोठी एक दिन मेरी हो जायगी और इस कोठी में रहने वाली युवती मेरी पत्नी कहलायेगी!

सरोजिनी देवी ने इत्तिला मिलने पर मुंशी रामकिशोर को अपनी बैठक में बुलवाया।

'कहिए क्या है?'—सरोजिनी ने लापरवाही से कहा।

'हरखू किसान को नोटिस देनी है। यदि आप उसकी मिसिल एक निगाह देख लें तो आपको मालूम हो जायगा कि हरखू को बड़ी बड़ी सहूलियतें दी गईं लेकिन उसने उन सहूलियतों से लाभ न उठाया और अब तक लगान नहीं चुकाया। इससे लाचार होकर हमें कानूनी कार्यवाही करनी पड़ रही।'

और कोई समय होता तो वह उस सम्बन्ध में कई सवाल पूछती, कुछ विशेष दिलचस्पी लेती; पर उस समय चुपचाप

आँख मूंद कर उसने कागज पर हस्ताक्षर कर दिये। उसके बाद रामकिशोर ने और कागज पेश किये। वह बोली—'इस समय अब और कागज रहने दीजिये। मेरा चित्त शान्त नहीं है।'

'कैसी तबियत है ?'—रामकिशोर ने व्यग्रता दिखाते हुए कहा।

'यों ही मुझे कुछ थकावट मालूम हो रही है।'

रामकिशोर ने कागज समेटते हुए कहा—'अब मैं कल आऊँगा।'

'यदि आप चाहें तो काम पूरा कर लें। दस्तखत ही तो करना है, मैं करती जाऊँगी !'

तब रामकिशोर ने दूसरी फाइल खोली। सरोजिनी झुक कर उस फ़ाइल के कागज देखने लगी। राम किशोर बोले—'यदि अप्रसन्न न हों तो मैं एक बात पूछना चाहता हूँ।'

'कहिए !'—सरोजिनी ने साश्चर्य कहा।

'आप इतनी व्यग्र क्यों हैं ?'

सरोजिनी आश्चर्य से रामकिशोर की ओर देखती हुई बोली—'धन्यवाद। आप बड़े उदार हृदय हैं। मुझे कुछ नहीं हुआ है। और कम से कम ऐसी कोई बात नहीं है जिसमें आप दिलचस्पी ले सकें।'

'हर ऐसी बात से जिसका आप से सम्बन्ध है मेरी दिल-चस्पी सहज ही हो सकती है।'

सरोजिनी ने गम्भीरता के साथ रामकिशोर की ओर देखा।

'ओह, अब मैं समझा ! आप मुझे अपने इलाके का एक मामूली कर्मचारी समझती हैं।'—सरोजिनी की आखें पढ़ते हुए रामकिशोर बोले।

'मुझे दुख है, आपने ऐसा अनुमान किया। मेरे मन में इस

तरह का कोई ख़याल नहीं है। यदि आपके हृदय में ऐसी भावना है कि मैं आपको अपने इलाके का मामूली कर्मचारी समझती हूँ तो मुझे दुःख है। पर बात तो यह है कि आप मेरी व्यग्रता के मामले में मेरी कोई सहायता नहीं कर सकते। (वह कुछ व्यथित सी होती हुई बोली) और आप क्या कोई भी नहीं कर सकता।'

रामकिशोर का चेहरा पीला हो आया। उनकी आँखें सरोजिनी पर जा पड़ीं। वे बोले—"श्रीमती सरोजिनी देवी, कोई भी समस्या आपके सम्बन्ध की ऐसी नहीं हो सकती जिसके सुलझाने में आप मेरी सहायता लेने में हिचकें। ऐसी कोई भी जगह नहीं है जहाँ मैं आपके लिये न जा सकूँ। ऐसा कोई भी परिश्रम नहीं है जो मैं आपके लिए न कर सकूँ।' उसी लहजे में वे कुछ और कहना चाहते थे लेकिन जैसे उनके हृदय की धुकधुकी बहुत तेज चलने लगी और वे कहते-कहते रुक गये।

सरोजिनी ने कलम रख दी और आश्चर्य भरी दृष्टि से रामकिशोर को देखने लगी। रामकिशोर उस दृष्टि के जवाब में क्षण भर के लिये स्तब्ध रहे; और तब जैसे उनकी वाणी में फिर पहले जैसी ताक़त आ गई। वे बोले—'आपको मेरी बातों को सुन कर आश्चर्य हो रहा है। आप सरीखी पद और मर्यादा वाली युवती के लिये यह समझना कोई कठिन बात नहीं है कि वह व्यक्ति भी जो कि आपके नौकरों की श्रेणी का है, हृदय रखता है। अनुभव करने की, सोचने की, समझने की, उसमें भी क्षमता है; उसके हृदय में भी स्पन्दन होता है!'

सरोजिनी के चेहरे पर एक लाली सी दौड़ आई। वह बोली—'मुझे स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं हुआ था कि मेरे शब्द आपको ठेस पहुँचा रहे हैं। आप मुझे क्षमा करें।'

रामकिशोर ने कहा—'यदि मैं अपने शब्दों को वापस ले सकता तो अवश्य ले लेता।'

सरोजिनी मूर्तिवत् खड़ी सुनती रही। उसे मालूम होता था जैसे रामकिशोर होश मे न हों। सरोजिनी एक अनिष्टकर आशङ्का से काँप उठी। कमरे से बाहर होते हुए बोली—'मैं जाऊँगी।'

'अभी नही, थोड़ा और ठहरिए। मेरी सारी बातें सुन लीजिए। सरोजिनी देवी! मेरे हृदय में आपके लिए जो भाव है, मेरी समझ में नहीं आता कि उस भाव को आप पर कैसे व्यक्त करूँ। आज आपको अत्यन्त दुखी देख कर मेरा मन न जाने कैसा हो उठा है। यह सच है कि मैं आपके पद-मर्यादा का नहीं हूँ; फिर भी आप जानती ही हैं कि मैं एक युवक हूँ—शिक्षित हूँ।'

सरोजिनी ने तमक कर कहा—'मैं आपकी बातें सुनना नहीं चाहती। कृपया उन्हें न दुहराइये।'

'तो आपको मेरी बातें अनुचित प्रतीत हो रही हैं?'—रामकिशोर ने निराश होकर कहा।

'हाँ,—सरोजिनी ने घृणात्मक स्वर में कहा।

सरोजिनी वहाँ से छूट निकलने की राह देख रही थी कि मुंशीजी आ धमके। मुंशी हरचरण लाल का चेहरा आज बहुत काला-काला दीख रहा था। उन्होंने सरोजिनी के सामने प्रसन्न होने का भाव दिखाना चाहा लेकिन उनके काले चेहरे ने उनका साथ न दिया।

नया सङ्कट

'आइए !'—कुर्सी छोड़ कर उठते हुए मिस्टर वर्नर बोले—

'आपकी तबीयत कैसी है ?'—सरोजिनी ने शिष्टाचार के विचार से पूछा।

'बिलकुल ठीक है। आपकी मौसी के स्वर्गवासी होने का बड़ा दुःख है। मैं अपनी तथा अपनी स्त्री की ओर से हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हूँ। सचमुच वे बड़ी अच्छी महिला थीं। मेरी स्त्री उनकी बड़ी प्रशंसा करती हैं।'

"इस सहानुभूति के लिए धन्यवाद ! वास्तव में मौसी बड़ी भलीमानुस थीं; उनका वियोग मेरे लिए बड़े दुःख का विषय है।"

'वे आपके सगे रिश्तेदारों में अन्तिम थीं न ?'

'जी हाँ !'

'और अब ! हाँ, खैर, सरोजिनीदेवी ! आपसे मुझे विशेष बातें करनी थीं। खेद है कि उन बातों को करने का यह उचित अवसर नहीं है फिर भी।"

'जी नहीं, आप निःसङ्कोच बातें करें। रही उचित अवसर की बात, सो मनुष्य के जीवन में सच पूछिए तो उचित अवसर कभी नहीं आता। जब कभी आता भी है, तो एक न एक बाधा उपस्थित हो जाती है।'

'आप ठीक कहती हैं। खैर, मुझे आपसे आपके विवाह की बातचीत करनी है।'

विवाह की बात सुन कर सरोजिनीदेवी कुछ लज्जित हो उठी।

'मेरा ख्याल था, यह बातचीत आपके किसी बढ़े-बूढ़े के द्वारा आपसे छेड़ी जाती तो अच्छा होता, पर आपका कोई निकटतम सम्बन्धी नहीं है; अस्तु आपसे मैं बातचीत कर रहा हूँ। मेरे

समाज में तो इस प्रश्न को युवतियाँ स्वयम् ही सुलझा लेती हैं पर इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?'

'मेरे विचार ?'—गम्भीर साँस लेती हुई सरोजिनी बोली—'मेरे विचार अभी कुछ भी नहीं हैं।

'ऐसी बात तो न होनी चाहिए। कुछ न कुछ विचार तो रखना ही चाहिए। आपको तो इस विषय में बहुत कुछ सोचना है। उदाहरण के लिए आप को यही सोचना है कि आप को कैसे युवक से विवाह करना है। इलाका गौरीपुर का नियम यह है कि इस इलाके का स्वामी यहीं रहेगा। कहीं और न जायेगा। स्वामिनी आप हैं ही। अस्तु, आप की शादी किसी ऐसे युवक से होनी चाहिए जो आप के ही घर रहे। यदि वह आपको अपने घर ले जाना चाहेगा तो सरकार इसकी इजाजत न देगी। और यदि देगी तो इस शर्त पर कि आप इस इलाक़े से हाथ धो बैठें। आप अपने अधिकार से वञ्चित कर दी जायँगी। कम से कम मैं ऐसा नहीं चाहता कि आप इतने बड़े इलाके से रहित हों। और यह इलाका उसी हालत में आप के हाथ में रह सकता है जब कि आप किसी ऐसे युवक से सम्बन्ध करें जो यहीं रहे। यह तभी होगा जब कि वह युवक किसी साधारण परिवार का हो। धनी परिवार का होगा तो वह आप को अपने यहाँ अवश्य ले जायगा। आप इस बात पर अच्छी तरह से विचार लें।'

सरोजिना गम्भीरता पूर्वक मिस्टर बर्नर की बाते सुनती रही जब मिस्टर बर्नर को बड़ी देर तक अपनी बातों का कोई उत्तर नहीं मिला तो वे फिर बोले—'हम लोगों ने—हम लोगों से मतलब है मुन्शी हरचरण लाल और मुझसे आपके लाभ के लिये कुछ और ही सोच रखा है। यदि आप उससे सहमत हों तो सब काम अपने आप बन जाय!'

सरोजिनी ने आँख उठा कर मिस्टर बर्नर की ओर देखा।

उसकी दृष्टि से यह मालूम हो रहा था मानो वह पूछ रही थी कि आप लोगों ने क्या सोचा है।

सङ्केत पाकर मि० बर्नर बोले--'मुन्शी हरचरणलाल के पुत्र मुन्शी रामकिशोर...'

रामकिशोर का नाम सुनते ही सरोजिनी की आँखें उठ गई। उसकी आँखों से जैसे चिनगारियाँ निकलने लगीं मिस्टर बर्नर ने सरोजिनी की आँखों को पढ़ा और तब कहते-कहते रुक से गये।'

सरोजिनी उठ पड़ी।

मिस्टर बर्नर बोले--'हर बात पर गम्भीर होकर सोचना चाहिए। इतनी उतावली न होनी चाहिए।'

'मिस्टर बर्नर, आप मेरा अपमान कर रहे हैं।'

मिस्टर बर्नर बोले--'क्षमा कीजिएगा। पर मैंने आप की जी दुखाने वाली कोई बात नहीं की है। मैं तो आपके ही हित की बात कह रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप इतने बड़े इलाक़े की स्वामिनी रही आवें।'

'इलाके के लालच के कारण आप मेरा बलिदान चाहते हैं?'--सरोजिनी सरोष बोली।

'इसमें बलिदान की क्या बात है। जो बात सम्भव है, वह मैंने आपको बता दी। अब आप इस विषय पर कुछ समय तक विचार करें। कोई जल्दी नहीं है। अब मैं चलूंगा। घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। मेरे रहते आप की कोई हानि न होने पायेगी।'

सरोजिनी आज इतने आवेश में थी कि मिस्टर बर्नर के अभिवादन का उत्तर भी न दे पाई। मिस्टर बर्नर के चले जाने पर सरोजिनी अपने कमरे में चली आई। वह बड़ी सोच में पड़ गई। तब उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी मौसी ने मरते समय जो कुछ कहा था उसमें आज की बातों का काफ़ी सङ्केत था।

वह आज की-सी असमञ्जस की परिस्थिति में किससे सलाह ले ? काशी से आने पर रत्नाकर और रोज़ के बढ़ते हुए सम्बन्ध के समाचार से उसे जो मार्मिक वेदना हुई थी, वह आज और भी बढ़ गई। वह मन ही मन सोचने लगी--'वे वैसे नहीं हैं। यह सम्भव हो सकता है कि विलासिता का वेश धारण कर रोज़ उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर ले, पर यह कभी सम्भव नहीं कि रोज़ उनका हृदय जीतने में सफलता पाये। फिर सामाजिक बन्धन भी तो है !'--वह इसी सोच विचार में पड़ी-पड़ी कोई किनारा खोज ही रही थी कि रत्नाकर और रोज़ आते दीख पड़े।

'आइए !'--उठकर आगन्तुकों का स्वागत करते हुए सरोज कुछ आगे बढ़ी।

रत्नाकर को सरोज का खिंचा हुआ चेहरा देख कर बड़ी उद्विग्नता हो आई। उसको इच्छा हुई कि यदि रोज़ इस समय साथ न होती तो कितना अच्छा होता। उसकी आँखें सरोज पर कुछ क्षण तक जमकर उसके मनोभावों को पढ़ने लगीं। पर वास्तविक कारण जानने में उन्हें सफलता नहीं मिली।

रोज़ ने सरोजिनी से आगे बढ़ कर हाथ मिलाया। बसन्ती रङ्ग की ज़मीन पर कचूरी रङ्ग की बिन्दीदार छींट का चुस्त फराक़, घुटनों के नीचे नङ्गी और पैर में फीतेदार सैण्डल, बाल घुँघराले पीठ पर बिखर हुए, आँखों, भौंहों का साज, ओंठ रँगे, सहज ही उन्माद उत्पन्न करने वाली युवती के साथ रत्नाकर को देख कर सरोजिनी की आत्मा को एक ठेस-सी लगी। पर-दूसरे-क्षण उसने अपने को सँभाल लिया। बोली—'किधर से आना हुआ आप लोगों का ?'

रत्नाकर बोले—'हम लोग मिस्टर बर्नर के बँगले से आ रहे हैं। आपका बाग करीब-करीब पूरा हो चुका है। इधर आप बहुत

दिनों से उधर नहीं गई। मेरा विचार है कि आपको साथ लेकर वहाँ चलूं।'

सरोजिनी को यह प्रस्ताव, मनबहलाव के विचार से सामयिक जान पड़ा। वह बैठी-बैठी घबरा रही थी। चलने को उद्यत हो गई। तीन घोड़े कसवा लिये गये और ये लोग बाग़ की ओर चल पड़े। चलते-चलते रत्नाकर सरोजिनी को देख लिया करते थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि वे सरोजिनी से कुछ बातें करें; परन्तु रोज़ उन्हें वैसा करने का मौका ही नहीं देती थी। रत्नाकर रोज़ के रूप से कुछ ऐसे प्रभावित हो चुके थे कि उनमें उस समय उसकी उपेक्षा करने की शक्ति ही नहीं रही।

तीनों सवार चुपचाप चले जा रहे थे।

सरोजिनी को रह-रह कर मिस्टर वर्नर से हुई बातें याद आ रही थीं। अस्तु वह गम्भीर थी। पर रोज़ और रत्नाकर आपस में तरह-तरह की बातें कर रहे थे। रत्नाकर को रोज़ की किसी भी बात में रस नहीं आ रहा था; पर शिष्टता से बाध्य होकर वे बात चीत कर रहे थे।

थोड़ी देर में बाग़ आ गया। तीनों सवार घोड़े से उतर पड़े। रत्नाकर घूम-घूम कर सरोजिनी को बाग़ के पेड़-पौदे दिखाने लगे। बड़ी देर तक बाग़ में घूमने के उपरान्त सरोजिनी को थकावट मालूम हुई। मानसिक बेचैनी ने शरीर में भी हरारत ला दी। वह बोली—'मैं आराम करना चाहती हूं।'

रत्नाकर बोले—'आज आपका जी कुछ अनमना मालूम होता है। मुझे न मालूम था। अकारण कष्ट दिया।'—ऐसा कह कर वे वट की छाया की ओर बढ़े! पलँग बिछवा दिया। सरोजिनी पलँग पर पड़ गई। बाग़ की ठण्ढी-ठण्ढी हवा ने उसके शरीर को अचेत कर दिया।

बड़ी देर बाद नींद खुली तो देखा, रोज़ और रत्नाकर दोनों

वहाँ नहीं हैं। दूर पर बैठी दो मजदूरिन मालकिन को उठी देख कर दौड पड़ीं। पानी ले आईं। हाथ-मुँह धुलाया।

सरोजिनी ने उन्हीं से पूछा—'वे लोग किधर गये हैं?'

एक मजदूरिन बोली—'वे लोग उधर गये हैं?'—और ऐसा कह कर उसने अँगुली से सङ्केत किया।

सरोजिनी भी उसी ओर चली। वट वृक्ष से करीब दो सौ गज़ की दूरी पर एक निकुञ्ज बनाया गया था। चारों ओर से लताओं ने उस स्थान को ढँक रक्खा था। केवल एक ही द्वार था।

सरोजिनी जिस समय द्वार के पास पहुँची वहाँ बिलकुल सन्नाटा था। रत्नाकर या रोज़ को यह पता नहीं था कि सरोजिनी स्वयम् वहाँ तक पहुँच जायँगी। अस्तु, वे दोनों व्यक्ति निकुञ्ज में बैठे-बैठे बातचीत कर रहे थे।

रोज़ को यह अच्छी तरह मालूम था कि सरोजिनी रत्नाकर को हृदय में पूजती है, पर साथ ही उसे यह भी मालूम था कि रत्नाकर इस बात को नहीं जानता। वह इस बात की कोशिश में रहती थी कि किसी तरह रत्नाकर के प्रति सरोजिनी के हृदय में सन्देह हो जाय। उसे अपनी इस साजिस को पूरी करने का आज जो अवसर मिला था, उसे वह खोना नहीं चाहती थी।

रत्नाकर से सटकर उस निकुञ्ज के भीतर बैठी-बैठी रोज़ ने रत्नाकर से पूछा—'आज आप इतने बेचैन क्यों हैं?'

'रोज़, काश तुम मेरी बेचैनी का कारण समझ पाती!'

'मैं समझने की कोशिश तो करती हूं, पर आप ही समझाने की कोशिश नहीं करते!'—रोज़ ने तिरछी आँखों से रत्नाकर की ओर देखते हुए कहा।

ऐसा कहते हुए वह रत्नाकर के और भी निकट चली गई। बोली—'यह देखिए, कितना सुन्दर फल खिला है'

'क्या आप को चाहिए; मैं अभी ला देता हूं।'—ऐसा कहते हुए रत्नाकर आगे बढ़ने लगे।

रोज़ ने उन्हें रोक कर कहा—'मैं स्वयम् तोड़ लूंगी, आप कष्ट न करें।'—ऐसा कहते हुए वह उस फूल की ओर बढ़ी। एकाएक उसका फ्राक एक गुलाब से फँस गया और वह लड़खड़ाती दीख पड़ी।

रत्नाकर तेजी से बढ़े और उसे सँभाल लिया। रोज रत्नाकर की गोद में आ गई। ठीक इसी समय सरोजिनी ने निकुञ्ज के भीतर प्रवेश किया।

रत्नाकर ने सरोजिनी को देखा और झट रोज़ को गोद से उतार दिया।

रोज़ ने सरोजिनी को देखा और सङ्कोच से एक ओर हो गई।

सरोजिनी का सिर चकराने लगा और वह उलटे पांव पीछे लौट पड़ी।

रत्नाकर भी बिना रोज की ओर देखे ही निकुञ्ज से बाहर निकल पड़े।

रत्नाकर सोचने लगे—आज अनर्थ हो गया। मालकिन के सामने मैं अपराधी पकड़ा गया। पर उन्हें इसमें बुरा मानने का क्या कारण!—ऐसा सोचते-सोचते वह बहुत-सी बातें स्मरण करने लगा। उसने सरोजिनी की आँखों को समझने की चेष्टा की—सजल, भरी, बड़ी-बड़ी आँखें तब मानों उसके सामने रूप धर कर खड़ी हो गईं। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो वे दोनों आँखें उससे कह रही हैं—'रत्नाकर' तुमने मुझे पहचाना नहीं, मैंने तुम्हें अपने हृदय में बिठा लिया है और तुम इस तरह पराये घर में क्यों भटक रहे हो?'

तब रत्नाकर की आँखें चमक उठीं। उसके शरीर में एक अजीब सनसनी हो आई। वह मन ही मन बड़बड़ा उठा—'तो मुझे सफाई देनी होगी।'—वह बेतहाशा आगे बढ़ा।

सरोजिनी घोड़े पर सवार होकर घोड़े को एड़ लगा चुकी थी। रत्नाकर खड़ा-खड़ा देखता रह गया।

सरोजिनी ने बाग में जो कुछ देखा उसे भूलना उसके लिए कठिन था। वह मुन्शी जी की बातों को भूल सकती थी, कोठी की आराम-प्रद जिन्दगी को भूल सकती थी; पर उस दृश्य को भूलना उसके लिए दुःसाध्य था।

कोठी में आने पर वह सीधे अपने कमरे में गई। एक बार तमाम वस्तुओं पर निगाह दौड़ाई। तब एक छोटी-सी एटैची में आवश्यकता की सारी चीजें रख, चुपके से, कोठी से निकल पड़ी। दिन के तीन बजे थे। किसी को इस समय सरोजिनी को अकेली जाते देख सन्देह ही क्या हो सकता था। वह यों भी दिन में अटैची लिये कभी-कभी शहर जाया करती थी।

वह अस्तबल में आई। कोचवान ने कहीं जाने की तैयारी में सरोजिनी को देख कर बग्घी जोती और सरोजिनी शहर के लिए रवाना हो गई।

कोचवान ने पूछा—'हुजूर, किधर चलूं?'

सरोजिनी बोली 'पूरब की ओर, रेलवे लाइन वाली सड़क पर।'

गाड़ीवान उधर ही चल पड़ा। चलते-चलते स्टेशन आ गया। सरोजिनी उतर पड़ी। उसे थोड़ी बेचैनी हुई। वह एक बार उस तमाम वातावरण को सोचने लगी जिससे अभी-अभी बाहर हुई थीं।

स्टेशन की बरसती में गाड़ी खड़ी कर दी गई। सरोजिनी ने

उतरते हुए कहा—'कोचवान, तुम यहीं ठहरो, मैं प्लेटफार्म पर टहलती हूँ।'

कोचवान ने घोड़ा खोल दिया। पूरब की गाड़ी आने में करीब पैंतलिस मिनट का समय था। सरोजिनी टिकट-घर में गई।

गाड़ी आई और चली गई। जब बड़ी देर होने लगी तो कोचवान घबराया और सरोजिनी को खोजने लगा; पर सरोजिनी दीख न पड़ी। वह व्याकुल हो चारों ओर सरोजिनी को खोजने लगा।

रत्नाकर बाग से सीधे कोठी आये। सरोजिनी के कमरे में गये। कमरा खुला पड़ा था। सरोजिनी उन्हें दीख न पड़ी। उसी समय चमेली सामने पड़ गई। वे बोले— 'मालकिन कहाँ हैं ?'

'क्या अपने कमरे में नहीं है ?'

'नहीं तो !'

चमेली दौड़ी हुई उनके कमरे में गई। उसका जी किसी अज्ञात अनिष्ट की आशङ्का से भयभीत-सा हो उठा। वह रत्नकार की ओर देखने लगी।

रत्नाकर भी वस्तु-स्थिति को कुछ समझ न पाया। कुछ देर तक कोठी के भीतर खोज करने के उपरान्त दोनों सीधे अस्तबल पहुँचे।

कोचवानिन ने बताया कि सरोजिनी पूरब की ओर घूमने गई है।

गोधूलि हो रही थी। चमेली और रत्नाकर पूरब की ओर चल पड़े। उधर से कोचवान गाड़ी लिये लौट रहा था। घोड़े ठिठक ठिठक कर चल रहे थे। कोचवान का सिर लटका हुआ था। चमेली को देखते ही कोचवान ने गाड़ी खड़ी करदी और पुक्का फाड़ कर रोने लगा।

चमेली की हालत बड़ी दयनीय हो गई। कोचवान को रोते देख कर वह सब बातें अपने आप समझ गई।

रत्नाकर का भी गला भर आया। उसने भरे गले से कोचवान से पूछा—'बात क्या है ?'

कोचवान को जितना मालूम था सब बता दिया। चमेली और रत्नाकर दोनों एक दूसरे का मुँख देखने लगे।

'अब !'—रत्नाकर ने लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा।

चमेली—'मैं क्या बतलाऊँ।'

रत्नाकर बोले—'मेरी समझ में एक बात आ रही है, कहो तो कहूँ !'

'कहिये !'

रत्नाकर ने कहा—'सरोजिनी देवी कोठी छोड़ कर चली गईं। क्यों गईं, यह बाद को मालूम होगा। उन्हें खोजना चाहिए। इस तरह उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। हम दोनों आज ही पूरब को चल पड़ें। जितने भी शहर पड़ें, वहाँ वहाँ खोजें।'

'मैं तैयार हूं।'

'पर इसके लिए पैसे चाहिए।'—रत्नाकर ने कहा।

'आप पैसे के लिए चिन्ता न करें।'—चमेली बोली—'मेरी माँ मरते समय मेरे लिए कुछ रुपया छोड़ कर मरी थीं। वह सारा रुपया मेरे पास है। उससे काम चल जायगा।'

चमेली और रत्नाकर बग्घी पर वापस आये रात हो जाने से किसी को यह न मालूम हुआ कि सरोजिनी देवी ही वापस लौटी है या और कोई।

आधी रात बाद चमेली और रत्नाकर भी दो पोटलियाँ दबाये कोठी से बाहर निकले और उसी निस्तब्ध रात्रि में सरोजिनी को खोजने के लिए निकल पड़े।

एक सम्भ्रान्त युवती को वहाँ अकेली देख कर दो चार आँख-सिकुओं ने उस ओर देखना आरम्भ किया। पर कलकत्ते में किसी युवती का उस तरह अकेली चलना कोई नई बात न थी। सरोजिनी ने देखा कि उसकी तरह न जाने कितनी युवतियाँ अकेली आ-जा रही हैं। टिकट कटा रही हैं, दे भी रही हैं, कुलियों से सामान उठवा रही हैं, झगड़ालू कुलियों को डाँट-फटकार भी रही हैं, तब उसने अपने मन में सोचा--'क्या मैं इन लोगों की तरह निर्भीक नहीं बन सकती, मैं डरूँ क्यों! क्या मैं स्त्री हूँ, इसीलिये मुझे डरना चाहिए ? कभी नहीं, मैं भी अपनी इन्हीं बहिनों की तरह निडर होकर चलूँगी।'

इस तरह सोचती हुई वह प्लेट फार्म से बाहर आई।

'आइये बहूजी, चौरङ्गी! हरीशन रोड! मानिक तल्ला! कहाँ चलिएगा ? ओ मेम साहिब, मैं चलूँ ?' इस तरह की अनेक आवाजें उसके कान में पड़ीं। उसने मन में विचारा--मेरे पास कपड़े कम हैं, अस्तु सबसे पहले रेडवे कम्पनी चल कर जरूरत के कपड़े खरीद लूँ।

'एक रिक्शा वाले से वह बोली--'मुझे रेडवे कम्पनी जाना है, क्या लोगे ?'

इतने में एक दूसरा रिक्शा वाला बोल उठा--'आइए मेम साहिबा, मैं भी वहीं जा रहा हूँ। यह देखिए, एक सवारी बैठी है, दो आने म पहुंचा दूंगा।'

उस रिक्शे वाले की आवाज सुन कर सरोजिनी ने उस ओर आँख उठाई तो देखा, रिक्शे पर एक युवती बैठी है। गोरे बदन की है पर वैसी सफेद नहीं जैसे अङ्गरेज होते हैं। पोशाक अङ्गरेजों ही जैसी पहिने थी।

सरोजिनी उस रिक्शे के पास चली गई।

'आप कहाँ जायँगी ?'--वह उस युवती से पूछ बैठी।

'रेडवे कम्पनी जाऊँगी।'--उसने सरोजिनी पर एक नजर दौड़ाते हुए कहा।

उससे इतना सुनते ही सरोजिनी भी उसी रिक्शे पर सवार हो गई।

रिक्शा वाला अपनी क्षुद्र घण्टिका घनघनाता चल पड़ा।

कलकत्ता सरोजिनी के लिए बिलकुल ही नया स्थान था। इसलिए वह रह-रह कर उत्सुक हो, हर मकान और हर सड़क को देख रही थी। कभी उचक बैठती, कभी एक ओर झुक जाती और कभी किसी एक ओर देखती ही रह जाती।

सरोजिनी की इन हरकतों को देख कर उस युवती से न रहा गया और वह पूछ बैठी—'क्या आप पहली बार कलकत्ता आई हैं?'

'हाँ!' सरोजिनी ने धीरे से कहा।

'आप कहाँ से आ रहीं हैं?'

सरोजिनी ने युवती को ध्यान से देखते हुए कहा 'मैं पच्छिम की रहने वाली हूँ।'

'यहाँ कहाँ जा रही हैं?'

'रेडवे कम्पनी।'

'सीधे वहीं जा रही हैं? वहाँ आप को किससे मिलना है?'

सरोजिनी भला इस प्रश्न का क्या उत्तर देती। वह उसका मुँह देखने लगी।

'बोलिए, मेरी ओर क्यों देख रही हैं?'

'क्या बोलूँ!'

तब युवती ने एक ठण्ढी साँस ली और अपने आप बोली 'मालूम होता है यह भी मेरी ही तरह घर से भाग कर आ रही है।'

सरोजिनी ने उन शब्दों को सुना और आँख फाड़ कर उसकी ओर देखती हुई बोली 'आपको यह कैसे मालूम हुआ कि मैं घर से भाग कर आ रही हूं ?'

युवती ने कहा—'मैं भी स्त्री हूं ! और तुम्हें देख कर इतना तो समझ ही सकती हूँ कि तुम कलकत्ते में प्रथम बार आई हो पर इतनी बात अवश्य है कि तुम में साधारण युवतियों से साहस अधिक है हमारे निर्बल अंग के लिये ऐसा साहस अब होना ही चाहिए।'

'आप कौन हैं ?'—सरोजिनी ने पूछा।

'मैं !'—वह हँस कर बोली—'मै भी आपही की तरह आज से दो वर्ष पूर्व कलकत्ते में आई थी। आज-कल रेडवे कम्पनी में नौकरी करती हूँ।'

'नौकरी ! क्या स्त्रियाँ भी नौकरी करती है ?'

युवती, सरोजिनी की भोली बातें सुन कर हँस पड़ी।

सरोजिनी की आँखों में आँसू आ गये वह बोली—'बहिन, हँसो मत। सम्भव है मुझे भी नौकरी ही करनी पड़े। कल तक मैं रानी थी, आज मैं भिखारिणी हूँ।'

युवती गम्भीर होकर सरोजिनी की ओर देखने लगी।

सरोजिनी कुछ कहना ही चाहती थी कि युवती बोल पड़ी—'मैं कुछ-कुछ समझ रही हूँ यह अच्छा ही हुआ जो मेरी आपकी भेंट हो गई। आपको इस समय विशेष कहने-सुनने की जरूरत नहीं। अगर आप के पास इतना पैसा हो कि आप नया कपड़ा खरीद सकें, तो एक-दो जोड़ा कपड़ा खरीद लें।'

'बहिन, मेरे पास इतने पैसे अभी हैं !'

'पर, उसके बाद ?'

'उसके बाद फिर देखा जायगा। और हाँ, जब कोई आप से कुछ पूछे तो आप मुझे अपनी बहिन बता दें।'

'बहिन ! तुम बहिन ही नहीं, बल्कि माता भी हो। मुझे ऐसा जान पड़ रहा है जैसे तुम देवी हो—साक्षात् देवी।'

रिक्शा रेडवे कम्पनी के विशाल भवन के सामने आकर रुक गया। सरोजिनी की आँखें इतना बड़ा मकान देख कर चकाचौंध में पड़ गई। युवती ने सरोजिनी का हाथ पकड़ा और ट्वायलेट-विभाग में ले गई।

उस विभाग में काम करने वाली युवती से आगे बढ़ कर हाथ मिलाते हुए बोली—'मिस डाली, ये मेरी बहिन हैं. घर से आ रही हैं, इनको पहले स्नान-घर में ले जाइए। वहाँ से वापस आने पर इनका शृङ्गार कर दीजिए मैं इनके लिए कपड़े लेने जा रही हूं।'

सरोजिनी ने अपनी अटैची खोल कर पचास रुपये के नोट उस युवती के हाथ पर रख दिये।

युवती बोली— 'हिन्दुस्तानी पोशाक लाऊँ या अङ्गरेजी ?,

सरोजिनी ने कहा'जैसी जरूरत समझो !,

'ठीक है।,—कहते हुए युवती कम्पनी के पोशाक विभाग में गई। एक फ्राक, एक फ्राककोट, एक लेडीज हैट, मोजे, अण्डरवियर तथा अन्य सामान खरीद कर ट्वायलेट-विभाग में आई। सरोजिनी शृङ्गार करके तैयार थी। कपडों की देरी थी। भीतर से कपड़े पहन कर जिस समय वह बाहर आई, वह युवती सरोजिनी को देख कर उछल पड़ी और बोली—'सुन्दर !,

ट्वायलेट वाली युवती को धन्यवाद देती हुई वह कम्पनी के आफिस-रूम में गई। सब साथियों से उसे अपनी बहिन बता कर परिचय कराया।

रेडवे कम्पनी की खूबी यह थी कि उसमें साधारण कर्मचारी से लेकर बड़े-बड़े मैनेजर तक के पद पर स्त्री ही काम करती थीं।

सब से परिचय कराने के बाद वह बड़े मैनेजर के कमरे में

गई। अभिवादन के उपरान्त सरोजिनी का संक्षेप में परिचय कराया गया। उस युवती ने कहा— मैडम, यदि आप चाहेंगी तो मेरी बहिन को कहीं न कहीं आश्रय अवश्य मिल जायगा।'

मैनेजर ने एक बार गौर से सरोजिनी की ओर देखा। कुछ क्षण तक बड़े गौर से देखने के बाद बोली—'अभी तो मेरे यहाँ कोई जगह खाली नहीं है। खाली होने पर, आप को अवश्य रख लिया जायगा। तब तक के लिए आपको कहीं और काम दिलवाने का प्रबन्ध करूँगी। कल आप इन्हें दस बजे दिन में ले आइए। रेलवे कम्पनी के सेवक-सेविका सप्लाई विभाग में ले जाइएगा, यहाँ प्रायः ऐसे लोग आते रहते हैं जिन्हें सेवक-सेविकाओं की आवश्यकता पड़ती ही हैं। मुझे पूर्ण विश्वास हैं, इन्हें कोई न कोई अवश्य रख लेगा।'

सरोजिनी नीचा सिर किये सब सुनती रही। उस स्त्री ने कुछ अधिक कहना बेकार समझा। इसलिए मैडम को धन्यवाद देकर वहाँ से बिदा हो गई।

युवती दिन भर का कार्य समाप्त कर सायंकाल मुक्त हुई। सरोजिनी वहीं कम्पनी के भीतर घूम-घूम कर सब जगहें और विभाग देख रही थी। उसे ऐसा मालूम होता था मानों वह किसी तिलस्मी मकान में आ गई है। रह-रह कर उसे चमेली की याद सता रही थी। पर लाचार थी। उसके लिए कोई चारा न था। दाँत पर दाँत दबाये वह अपने मनोवेग को रोक रही थी।

कार्य की समाप्ति पर सब कर्मचारियों को छुट्टी मिली। वह युवती भी तब कार्य-मुक्त हो सरोजिनी को लिये घर को रवाना हुई। दोनों एक साथ बाहर निकलीं। फाटक पर, न जाने कितने लोग खड़े थे। वह युवती सरोजिनी को साथ लिये बड़ी फुर्ती से वहाँ से बाहर आई और आगे बढ़ गई।

हरिसन रोड की ट्राम तत्काल खड़ी मिली। दोनों उस पर सवार होकर हबड़ा ब्रिज पहुँचीं। युवती ने वहाँ से फिर रिक्शा किया। नौ बजते-बजते युवती एक छोटी-सी कोठी के सामने उतरती हुई बोली—'यह है हमारा कॉटेज, तुम्हें पसन्द है?'

'बहुत अच्छा है!'

युवती ने ताला खोला। भीतर गई। रोशनी जलाई। बिजली की अंगीठी से बिजली का तार लगाया। इधर अँगीठी जल उठी, उधर हाथ-मुँह धोकर, वह भोजन बनाने बैठ गई। सरोजिनी काम में मदद देने के लिए आगे बढ़ी। युवती ने उसे रोक दिया और बोली—'आज के दिन तुम मेरी मेहमान हो, आज-कल में सब काम देख-समझ लो, फिर करना।'

सरोजिनी सङ्कोच में आकर पीछे हटते हुए बोली—'बहिन' मैं प्रायः सुना करती थी कि परदेश में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है; और स्त्रियों को तो और भी कदम-कदम पर मुसीबत का सामना करना पड़ता है, पर मुझे तो यह सब एक भी बात नहीं हुई। ऐसा मालूम होता है मानो मैं अपने घर में आ गई हूँ। मैं तो बहुत डरा करती थी।'

'तुम जो सुनती थीं'। वह भी सच है, और तुम्हें जो कुछ देखने को मिला, यह भी सच है। यह कोई जरूरी नहीं कि हर एक को परदेश में सङ्कट ही सङ्कट पड़े। और यदि ऐसा ही होता तो कलकत्ता बम्बई-सा नगर न बस जाता। सङ्कट-विपत्ति पड़ती क्यों है? हम तुम ही एक दूसरे के सङ्कट का कारण बनती हैं। तुम हमसे मिलीं।। अब हम यदि चाहतीं तो तुम्हें अनेक सङ्कटों में फँसा देतीं। तुम्हें किसी चक्में में डाल देतीं। तुम्हारा माल-असबाब सब हड़प कर लेतीं। तुम्हें बदमाशों के चङ्गुल में डाल देतीं। पर इन सब में से मैंने एक भी बात तुम्हारे साथ नहीं की। जानती हो, क्यों नहीं किया?'

'नहीं !' सरोजिनी बोली।

इसलिए कि वैसा करने की मुझे न तो शिक्षा मिली और न आवश्यकता पड़ी। जिन बहिनों और भाइयों को वैसी शिक्षा मिली होती है, और जिन्हें वैसा करने की आवश्यकता होती है, वे करते ही हैं; अन्यथा आज जो सैकड़ों की संख्या में मुकदमे चल रहे हैं, क्यों होते ! अस्तु, परदेश में मिलने वाला संकट इस लिए नहीं मिलता कि परदेश सङ्कट की ही जगह है। तुम नारी हो यह भी कोई कारण नहीं कि तुम्हें पुरुषों की अपेक्षा-कृत अधिक सङ्कट मिले।

'जिसे बदमाशों से पाला पड़ जायगा, जिन्हें समाज के लुच्चे-लफङ्गों से भेंट हो जायगी, जो स्वार्थी व्यक्तियों के चक्कर में पड़ जायगा, वही सङ्कटापन्न हो जायगा। तुमने अभी जो स्त्रियों की बात कही है, मैं उसे ही लेती हूँ; क्या पुरुषों को ऐसे बड़े-बड़े शहरों या अपरिचित स्थानों में बदमाश नहीं मिलते ? उन्हें भी मिलते हैं। सुनो, मैं इसी कलकत्ते की एक कहानी तुम्हें सुनाती हूँ। यह कहानी नहीं, सत्य घटना है। क़रीब साल भर की पुरानी बात है, इसी हवड़ा स्टेशन पर ट्रङ्क में एक लाश मिली थी। लाश एक नवयुवक की थी। आह ! कितना सुन्दर था वह व्यक्ति ! किसी निर्दयी ने उसकी हत्या कर, उसी के सन्दूक में उसकी लाश बन्द कर दी थी। पुलिस ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह दिल्ली के किसी रईस का लड़का था, व्यापार के लिए साथ में दस-बारह हजार रुपया लेकर आ रहा था। गोइन्दों ने दिल्ली से ही उसका पीछा किया। वह सेकिण्ड क्लास में चल रहा था। मौका पाकर उसका खून कर दिया; सारा रुपया ले लिया और उसे मार कर सन्दूक में बन्द कर दिया।

'वह तो पुरुष था। फिर उस पर संङ्कट क्यों आया ? इस लिए कि वह निर्बल था, अपनी रक्षा से असावधान था।'

'पर बहिन, स्त्रियों पर दुष्टों की विशेष आँख रहती है।
'वह इसलिए कि पुरुषों की अपेक्षाकृत स्त्रियाँ अपने को अधिक भीरु प्रदर्शित करती हैं। यदि स्त्रियाँ अपनी निर्भीकता प्रदर्शित करें तो क्या मजाल कोई उनकी ओर आँख तो उठा ले। स्त्रियों को इसलिये भयभीत होने की आवश्यकता नहीं कि वे स्त्री हैं। सोचो तो सही, जब पुरुष अकेला, सहस्रों मील की यात्रा कर सकता है, एक अपरिचित स्थान में पहुंच नौकरी तलाश कर आजीविका में लग सकता है, नये नये मित्र बना सकता है, नये नये स्थानों में जाकर मनोरञ्जन कर सकता है, तो क्या स्त्रियाँ वैसा नहीं कर सकतीं? स्त्रीत्व हमारे किसी भी कार्य में बाधा नहीं पहुँचाता और न पुरुषत्व किसी कार्य में अनायास सहायक होता है। अपने से अधिक शक्तिशाली के आगे दोनों को पराजित होना पड़ता है। आज नारी को अपने मन से यह ख्याल हटा ही देना होगा कि हम नारी होने के नाते भीरु हैं, निर्बल हैं। प्रश्न केवल साहस सञ्चित करने का है।

'यों, साहस के अतिरिक्त भी एक और वस्तु है जिस पर हमारा आधिपत्य होना आवश्यक है, वह है प्रलोभन। किसी की मीठी-मीठी बातों में आ जाना, किसी चमकती चीज को देख कर उस पर लट्टू हो जाना, बैठे-बैठे खाने का आदी होना, सदा पुरुष के आश्रय और प्रश्रय में ही रहना.........आदि गुण हमारी श्रेणी के लिए प्रलोभन हैं।

'भोली बहिन, आज इस देश में ऐसी स्त्रियों की अधिक से अधिक आवश्यकता है जो पुरुषों का आश्रय और प्रश्रय त्याग कर, प्रलोभनों पर अधिकार जमाते हुए अपनी स्वतंत्र हस्ती कायम कर सकें। जब एक युवक बीस-बाईस की उम्र को पहुँच कर अपने परिवार का पालक बन सकता है, एक गृहस्थी का भार

उठा सकता है, तब एक युवती क्यों न वैसा करे ? स्त्रियाँ सब कुछ कर सकती हैं; इसका उदाहरण हमारी यह रेडवे-कम्पनी है जिसने तुम्हें शरण दी है। आज उसमें साढ़े तीन सौ स्त्रियाँ काम करती हैं देश के हर प्रान्त की युवतियाँ उसमें काम कर रही हैं। उसमें काम करने वाली हर युवती का अपना अलग इतिहास है—अपनी एक कहानी है।

'मैं सचमुच भाग्यवती हूँ, जो कलकत्ते में पैर रखते ही आप से मिली।'—सरोजिनी ने कहा।

दूसरे दिन सरोजिनी को रेडवे कम्पनी की सेविका सप्लाई विभाग की सहायता से एक सभ्रान्त परिवार में काम मिल गया। इस परिवार की अध्यक्षा कोई रानी साहिबा थीं। रानी के अतिरिक्त उनके एक भतीजे कुँवर चन्द्रपाल भी उनके साथ रहते थे। चन्द्रपाल युवक एवम् सुघड़ व्यक्ति थे। युवती सरोजिनी और युवक चन्द्रपाल एक दूसरे के लिए आकर्षण की वस्तु बन गए। रानी को ज्यों ज्यों सरोजिनी के स्वभाव का परिचय मिलता गया। वह उसे प्यार करने लगी। धीरे धीरे रानी सरोजिनी को बेटी सी जानने लगी।

एक दिन चन्द्रपाल के विशेष आग्रह से सरोजिनी थियेटर गई। कोई विशेष नृत्य का आयोजन था। वहाँ से लौटने पर दोनों एक दूसरे के अत्यन्त सन्निकट हो गए।

—:०:—

चालबाजियां

मिस्टर बर्नर और मुंशी हरचरणलाल गम्भीर मुद्रा में बैठे कुछ सोच रहे थे, पर कुछ तय नहीं कर पा रहे थे।

रोज़ रत्नाकर के इस तरह चले जाने से क्षुब्ध हो उठी थी। उसे इसमें अपना अपमान दीख रहा था। जिस युवक को वह इतना प्यार करे वह उसकी उपेक्षा कर बैठे, यह बात रोज़ जैसी युवती के लिये असह्य थी। वह रत्नाकर से जल उठी और इसका बदला लेने की सोचने लगी। उसने अपने आप कहा—'माना, सरोजिनी से मेरा कोई व्यक्तिगत विरोध नहीं; फिर भी रत्नाकर को विलग करने का कारण तो वही है। और रत्नाकर! छिः कितनी गलती की उसे मैंने अपने प्यार की वस्तु समझ कर! मेरे अपने समाज के न जाने कितने योग्य युवक पैरों पर लोटने को तैयार हैं। उन सब को निराशित कर मैंने इस रत्नाकर को अपने प्यार की वस्तु बनाया, उस पर अपने को वारती रही। कहाँ तो वह स्वयम् मेरे प्रेम की भीख माँगता और मैं उसे ठुकरा देती; और कहाँ वह स्वयम् मुझे ठुकरा कर चला गया! अवश्य ही उससे इस अपमान का बदला लेना चाहिये।

रत्नाकर, चमेली सरोजिनी तीनों गायब थे। उन पर कौन सा आक्षेप किया जाय, उनका जाना प्रकट किया जाय या गुप्त रखा जाय, अधिकारियों को क्या बताया जाय—आदि बातें मिस्टर बर्नर और मुंशी हरिचरण लाल को सता रही थीं।

मिस्टर बर्नर ने मुन्शीजी को प्रश्न सूचक नेत्रों से देखा।

मुंशीजी बोले—सरकार! मेरी राय में तो इस सम्बाद को

छिपा रखना चाहिए। यह घोषित कर देना चाहिये कि वे कलकत्ता घूमने गये हैं। एक ओर ऐसा सम्वाद प्रकट किया जाय, दूसरी ओर कुछ चुने लोगों को कलकत्ता भेजा जाय। ये लोग उन की खोज करें और अधिक से अधिक दिन तक उन्हें कलकत्ता में फँसाये रखें। इस बीच सरोजिनी देवी से वे ही लोग एक पत्र भी यहाँ भिजवा दें कि 'मैं कलकत्ते में हूँ घबराने की बात नहीं।' जब ऐसा पत्र आ जायगा तब हम उस पत्र को अधिकारियों के समक्ष पेश कर देंगे। सरोजिनी देवी को कलकत्ता खर्च भेजने के बहाने भी हम काफी रुपया बना सकते है!'

मिस्टर बर्नर को मुंशीजी की राय जँच गई, पर यह सोच कर उनका चेहरा और भी लटक गया कि इस गुप्त कार्य को सम्पादित करने के लिए वे किन-किन आदमियों को भेजेंगे। उन्होने अपना यह ख्याल मुन्शीजी पर प्रकट किया।

मुन्शीजी फिर बोले—'इस काम को दो व्यक्ति अच्छी तरह कर सकते हैं। एक मेरा लड़का और दूसरे आपकी पुत्री। इन्हीं दोनों के लिए हम और आप यह सब कर-धर भी रहे हैं। ये निहायत विश्वास के साथ कार्य भी करेंगे।'

मिस्टर बर्नर के सिर से मानो सारा बोझा उतर गया। दूसरे दिन रामकिशोर और रोज़ कलकत्ते के लिए चल पड़े।

रोज़ और रामकिशोर परस्पर एक दिल न होते हुए भी लक्ष्य में एकता रखते थे। दोनों को विभिन्न कारणों से सरोजिनी देवी से विरोध था। यूरोपियन वेश में सजी रोज़ के साथ, रामकिशोर अपने हिन्दुस्तानी वेश में खानसामा ऐसे जँच रहे थे। अस्तु, कलकत्ता पहुँचते ही उन्होंने भी यूरोपियन वस्त्र खरीद कर अपना वेश परिवर्तित कर लिया।

वार्ले होटल में रामकिशोर और रोज़ ने डेरा जमाया। खूब

घूम-घूम कर कलकत्ता देखा। एक ईसाई बाला के लिए क्या कलकत्ता क्या काशी! उसके लिए कहीं भी झिझक नहीं। वह स्वतन्त्रमना युवती होटल में बड़े चैन से रहने लगी। नित नये युवकों से वार्तालाप, खाना-पीना; बार्ले होटल की डान्स पार्टी! राज़ अपने जिस उद्देश्य को..........लेकर कलकत्तें आई थी उसे भूल सी गई।

यहाँ गौरीपुर से चिट्ठी पर चिट्ठी इस बात की आ रही थी कि सरोजिनी का कुछ पता लगा हो तो उससे चिट्ठी लिखवा कर शीघ्र भेजो। लेकिन रोज़ को अब इस सिरमगज़न की क्या आवश्यकता थी। चढ़ी जवानी, रूप-रेखा, तड़क-भड़क, कलकत्ता का जीवन! हज़ारों रुपये घर से आते थे। उसकी वजह से बार्ले होटल का भाग्य चमक उठा। होटल का मैनेजर प्रति दिन उसका सिजदा करने आता। होटल के मैनेजर का नवयुवक पुत्र डिक तो मानों रोज़ के नशे में चूर-सा रहता। डान्स में रोज़ सदा डिक का साथ देती। दोनों नाच-घर और बार में जाते और अपनी थकावट मिटाते।

रामकिशोर को यह सब कुछ अच्छा न लगता। इसका वे विरोध करते; पर उनका विरोध वहाँ सुनता ही कौन! डिक और रोज़ ने, रामकिशोर को प्रसन्न करने के लिए, होटल की एक 'गर्ल' को चुना और रामकिशोर को उसी में उलझा दिया।

पर रामकिशोर अपने लक्ष्य को तब भी न भूल सका। उसने एक नया रुख लिया। डिक पर अपने आने का भेद खोल दिया कि यदि डिक इस काम को कर दे तो उसे दस हज़ार रुपये तक दिलाये जा सकते हैं।

इस तरह अपना एक और साथी बनाकर रामकिशोर भी ज़िन्दगी के मज़े लेने में लीन हो गया।

रोज़ ने एक दिन डिक से कहा—'डियर, क्या तुम मुझे प्यार करते हो ?' डिक ने अपने होठों को चाटते हुए कहा—'डार्लिङ्ग, ऐसा कौन हाड़-माँस का पुतला होगा जो तुम्हें प्यार न करे।'

'आजूँ' का दूसरा गिलास खतम करते हुये रोज़ खिलखिला कर हँस पड़ी। फिर बोली—'उफ मैं भी कितनी मूर्खता करने जा रही थी! एक हिन्दुस्तानी 'कण्ट्री ब्राण्ड' को प्यार की वस्तु बनाने जा रही थी। भला वह मुझे क्या समझ पाता। क्या वह मेरी संस्कृति और सभ्यता को अपनी बना सकता?'

डिक हँसता हुआ बोला—'वह तो तुमको साड़ी पहनाता, सिर में सिन्दूर लगवाता, हाथ में चूड़ियाँ डाल देता और पैरों में बेड़ियाँ भरवा देता। सच पूछो तो रोज़, उस समय तुम और भी अच्छी लगती!'

'यस डियर, मगर वह सब मुझे पसन्द नहीं। अच्छा हुआ फादर जीसु ने मुझे उस बला में फँसने से मुझे बचा लिया।"

सिगरेट के धुएँ को दोनों ओठों से मुक्त करते हुए डिक ने कहा—'रोज़, तुम बड़ी भावुक हो। यह मेरा भाग्य था जो तुम इस होटल में ही सीधे आईं; नहीं तो ऐसी सुनहली चीज़ मुझे कहाँ मिलती?'—ऐसा कहकर उसने एक अतृप्त चेष्टा की।

रोज़ की आँखों में लाली छा गई थी। 'आजूँ' के तीन गिलासों ने उसके कपोलों को गहरा आरक्त कर दिया था। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से, मदहोशी प्रकट हो रही थी।

डिक ने देखा, समझा और उसी मदहोशी में वह भी मद-होश हो बह गया।

❀ ❀ ❀

आज गौरीपुर की कोठी में जैसे आग सी लग गई है। उसके बुझाने का प्रयत्न किया जा रहा है। सैकड़ों आदमी कोठी में इस

तरह दौड़ धूप कर रहे हैं जैसे पानी सूखने के पूर्व, उस स्थान की मछलियाँ पानी की सतह पर आ जाती हैं। मिस्टर बर्नर के मुँह पर धान डाल दो तो लावा हो जाय; ऐसा वह लाल हो रहा है। मुंशी हरचरणलाल का चेहरा तवे की पेंदी सा काला हो उठा है। कोठी के प्रशस्त हाल में ज़िले के बड़े बड़े अधिकारी लोगों से बयान ले रहे हैं। सरोजनी देवी के गायब होने का उन्हें पता लग गया है। अधिकारियों को मिस्टर बर्नर के आदमियों का बयान बनावटी जान पड़ा। वे हिरासत में ले लिये गए। बड़ी कोशिश के बाद कोचवान के बयान से परिस्थिति पर थोड़ा सा प्रकाश पड़ा। उसने बताया कि भागने के एक दिन पूर्व आधी रात को कई व्यक्ति सरोजनी के कमरे में गए थे। वे मालकिन से किसी कागज पर दस्तखत कराना चाहते थे। उन्हें धमकी दे रहे थे। उसी रात के बाद वाले दिन को मालकिन यहाँ से सदा के लिये चली गईं। उनके नाम पर कलकत्ता जो रकम भेजी जा रही है, वह भी एक जाल है।"

अधिकारियों को इस बयान पर सन्देह करने का कोई कारण न जान पड़ा। दोनों चालबाज हिरासत में तो लेही लिए गए थे, अब उन्हें हवालात भेज दिया गया। नये मैनेजर आगए। नये मैनेजर को कागज पत्र सँभालते समय एक रहस्य पूर्ण सीलबन्द लिफाफा मिला।

मैनेजर ने लिफाफा अधिकारियों के पास भेज दिया। अधिकारियों ने जब लिफाफा खोलकर पढ़ा तो बड़ी उलझन में पड़ गए। वह एक तरह का वसीयतनामा था। उसमें लिखा था।

"मेरे नजदीकी रिस्तेदार श्री चन्द्रकुमार हैं। यही हमारे वास्तविक उत्तराधिकारी हैं—लेकिन उनके दुर्व्यवहार के कारण हम उन्हें अपना उत्तराधिकारी न मान अपनी भतीजी को ही

उत्तराधिकारी बनाते हैं। यदि दुर्भाग्य से हमारी भतीजी न रहे तो उसके बाद इलाका भी चन्द्रकुमार के खान्दान में दे दिया जाय।"

इस गुप्त वसीयत को पढ़कर एक नई उलझन पैदा हो गई। सरोजनी देवी का पता ठिकाना नहीं था। इलाका अधिक दिन तक बिना मालिक के रखा भी नहीं जा सकता था। तब यह तय हुआ कि पत्रों मे सारी घटना को प्रकाशनार्थ भेज कर सरोजनी देवी के आने की एक आखरी तारीख तय कर दी जाय। यदि उस तारीख तक वे नहीं लौटती हैं, तो इलाका, राय महोदय की इच्छा के मुताबिक श्रीचन्द्रकुमार के खान्दान वालों को सौंप दिया जाय।

परिणाम

कलकत्ते में रानी उर्मिला देवी का बड़ा नाम था। कोई ऐसा महीना न जाता जब कि उनके यहाँ एक न एक प्रकार का उत्सव न होता। अबकी बार उत्सव में विशेष जान आ गई थी। कारण यह था कि, अधिकारियों ने सरोजिनी के लिए जो सूचना छपवाई थी, वह उनके हाथ लग गई थी। उससे वे सरोजिनी के बारे में बहुत कुछ जान गई थीं। फलतः उन्होंने अपने भतीजे चन्द्रपाल और सरोजिनी को प्रेम और विवाह सूत्र में बाँधने का निश्चय कर लिया था। आज का यह उत्सव इसी शुभ सम्वाद की घोषणा के लिये आयोजित था। इसीलिए कलकत्ता का कोई भी ऐसा रईस न था जो इस दावत में न आमन्त्रित हो।

यह एक संयोग की बात थी कि रत्नाकर जिन मित्र के यहाँ ठहरा था उन्हें भी आमन्त्रित किया गया था। उन मित्र, को कोई विशेष कार्य आ पड़ा था, अस्तु वे न जा सके थे। उन्होंने रत्नाकर को अपनी जगह पर भेज दिया था

जिस वक्त, रानी साहब की विशाल कोठी में रत्नाकर घुसा वह चकित रह गया। इतनी वैभव विशालता उसने तब के पूर्व कभी न देखी थी। एक हजार से ऊपर अतिथि आमन्त्रित थे। बैंड ने अतिथियों की सलामी की और दावत आरम्भ हुई। एकाएक रत्नाकर की निगाह सबसे बीच में बैठी पंघत पर पड़ गई। उसने देखा, अत्यन्त सुसज्जित वेश भूषा में सरोजिनी एक प्रौढ़ा के साथ बैठी है। उसकी आँखें एकाएक चमक उठीं। पर अब उसके सामने प्रश्न यह उप स्थत हुआ कि वह उसके पास कैसे पहुँचे। तभी दावत समाप्त होने की सूचना मिली। सब लोग उठ पड़े। तदनन्तर हाल में सब की बैठक पुनः शुरू हुई। बड़े बड़े गुणियों का गाना बजाना हुआ। इसके अनन्तर रत्नाकर ने देखा सरोजिनी प्रसन्न बदन इधर उधर घूम रही है। वह कुछ समझ न सका। सरोजिनी का ध्यान उसकी ओर उठ नहीं पा रहा था तब उसने भी गाने की इच्छा प्रकट की। लोगों ने उसकी इच्छा का समर्थन किया। समाजियों के पास पहुँच कर जिस समय उसने अलाप लिया, जनता स्तंभित हो उसकी ओर निहार उठी! ठीक उसी समय सरोजिनी की भी आँखें उस ओर उठ गईं। वह तब चीखते चीखते रह गई।

रत्नाकर ने अपने गाने से लोगों का मन मोह लिया। लोगों के आग्रह से उसने कई गाने और गाये! बड़ी रात गये जब समारंभ पूर्ण हुआ तो वह जाने लगा। ज्यों ही वह फाटक के पास आया कि किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया।

वह यही तो चाहता था। उसके संकेत पर वह उसके पीछे पीछे चला। एकान्त में पहुँच कर रत्नाकर बोला आज महीनों की मेरी साधना सफल हुई। सरोज तुम्हें देख सका। मैं अब बिल्कुल निराश हो चला था। बोलो तुम यहाँ कैसे पहुँची—

सरोजनी का गला भर आया उसने फँसते गले से कहा "मैं यहाँ नौकरी कर रही हूँ।"

"मुझे तुम्हारे गायब होने के बारे में सारी बातों का पता लग गया है। तुमने सब बात ठीक किया, पर मुझ पर सन्देह करना तुम्हारे लिए उचित नहीं था। मैंने रोज़ को कभी भी प्रेम की आँख से नहीं देखा। लेकिन अब क्या हो सकता है ......अरे हाँ। मैं तुम्हें बधाई देना भूल गया।"

"बधाई किस बात की !!" सरोजनी चौंक कर बोली।

"रानी साहबा के साथ ब्याह करने की।"

"तुम भी मुझे गलत समझ रहे हो रत्नाकर" ऐसा कहकर वह फफक पड़ी !"

"सरोज ......" रत्नाकर चीख उठा। फिर बोला यह सब कैसे हुआ।

"यह सब जानकर क्या करोगे।"

"क्या मैं तुम्हारे दुख सुख को जानने का अधिकार नहीं रखता !

सरोजनी बोली 'तुम्हें सब अधिकार है और उसके बाद वह अपनी दुख कहानी सुना बैठी। उस दिन बाग से वापस आने के तीन-चार दिन बाद मुन्शी जी अपने पुत्र के साथ क्रोध में मेरे कमरे में उपस्थित हुए। बड़ी-बड़ी बातें हुईं। मुझे आपके साथ एकान्त-वास का दोष लगाया। उनके इस आक्षेप को सहना मेरे बस की बात न थी। फिर धमकी दी कि वे मुझे भिखारिणी बना

कर दम लेंगे; इलाका गौरीपुर मुझसे छिनवा लेंगे। इन सब से छुटकारे के लिए मेरे सामने प्रस्ताव रखा कि मैं उनके पुत्र के साथ ब्याह कर लूँ। उनका वह प्रस्ताव मुझे बड़ा ही अपमान-जनक एवम् असह्य जान पड़ा। उनके रुख को देखकर मुझे मालूम हो गया कि वे मुझे जलील करने के लिए कुछ उठा न रखेंगे। अस्तु, मैंने गौरीपुर को सदा के लिए छोड़ देना ही उचित समझा। मैं अनाथ हो गई। और कलकत्ता चली आई।'

"भगवान ने तुम पर इतनी आपदाएँ डालीं और मुझे कुछ भी नहीं मालूम हुआ। तुम मुझे बिलकुल भूल गईं। कहते रत्नाकर का चेहरा उतर गया।

'मुझे क्षमा कीजिए। मैंने ये बातें आपके हृदय को दुखाने के लिए नहीं कही है।'

सरोजनी ने प्रार्थना के स्वर में कहा—'कृपा कर, इन बातों को यहाँ न कहिएगा। एक बात तो आप मानेंगे ही कि मेरी भाग्य बड़ी अच्छी थी जो यहाँ पहुँच गई। आशा है, भगवान मुझसे यह जगह न छीनेगा। रानी साहबा बड़ी दयालु हैं। मैं तो समझती हूं कि मैं अपनी माँ के पास आ गई हूं। फिर भी अपनी पिछली अभाग्य सोचकर सदा सशङ्कित रहती हूँ कि कहीं यह घर भी न छूट जाय।"

मैं किसी से न कहूँगा और न यहाँ अब एक दिन रहूंगा ही।

सरोजनी ने घबड़ा कर कहा—'मेरे कहने का यह अर्थ न लगाइए। अधिकांश मनुष्य इतने सरल चित्त होते हैं कि किसी के भेद को वे छिपा कर नहीं रख सकते, प्रकट कर देते हैं, हालाँकि उसके प्रकट कर देने में उनका कोई लाभ नहीं होता, पर दूसरे की जो हानि होती है, उसकी वे कल्पना नहीं कर पाते। इसी भय से मैंने आपको आगाह कर दिया है। आप ही सोचिए, यदि यह

सामने होते तो कदाचित् मेरी इस उक्ति को मेरी मक्कारी समझते। आप दोनों इसका यह भी अर्थ लगा सकते हैं कि वास्तव में मैं आप दोनों में से किसी को भी प्यार नहीं करती; अथवा मैं किसी को प्यार करने के योग्य नहीं हूँ; पर सच पूछिए तो मैं आप दोनों व्यक्तियों को प्यार करती हूँ। दो क्या चार को प्यार कर सकती हूँ, ठीक उसी तरह जैसे आप किसी बाग़ में घूमते समय कई पुष्पों को प्यार करते हैं। पत्नीत्व और प्यार दो विभिन्न वस्तुएँ हैं। एक यदि हृदय की भावुकता है तो दूसरा उसका प्रत्यक्ष स्वरूप। 'एक चित्रकार है जो तूलिका लिये कल्पना-जगत में एक आदर्श के लिए घूम रहा है। क्या आप सचझते हैं कि उस समय उसके सामने केवल वही आदर्श दिखाई देता है जिसको अपनी तूलिका से प्रत्यक्ष कर दिखाता है! नहीं, वह अनेक आदर्शों का पहले मानसिक चित्र बना लेता है जब वह समझ लेता है कि अमुक चित्र को वह सफलता पूर्वक पर्दे पर खड़ा कर सकता है तब वह सँभल कर तूलिका उठाता है और अनेक खयाली चित्रों में से किसी एक को प्रत्यक्ष कर दिखाता है। मैं पुनः यह व्यक्त कर देना चाहती हूँ कि मैं आप दोनों में से किसी को भी घृणा नहीं करती। मैंने चन्द्रपाल को प्यार की वस्तु बनाने में कितना बड़ा त्याग किया है, इसे शायद वे न समझ पायेंगे। काश; वे मेरे त्याग के मूल्य को समझ पाते।'—कहते-कहते सरोजिनी का गला भर आया। उसकी आँखें सजल हो उठीं।

'सरोज! यह क्या कर रही हो, ऐसा न कहो।'—कहते हुए रत्नाकर ने रुमाल निकाल कर सरोजिनी के हाथों में दे दिया और बोले—'लो, आँखें पोंछ डालो! मैं तुम्हारे हृदय को समझ गया। अवश्य ही वह युवक बड़ा भाग्यशाली होगा जो तुम्हें पत्नी रूप

में पायेगा। सरोज ! विश्वास रखो, मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में फिर कभी कष्ट न दूंगा।

सरोजिनी बिना आँसू पोंछे ही उठी और रत्नाकर के बगल में खड़ी होकर धीरे से बोली--मैं चन्द्रपाल की लैला नहीं हूँ; तुम्हारी हूँ; पर परिस्थितियों से बाध्य हूँ। यदि इस अवसर पर आप मुझे छोड़ कर चले गये तो मेरी परिस्थितियाँ और भी जकड़ उठेंगी।'

'मैं न जाऊँगा सरोज !'

उसी रात को रत्नाकर सरोज को लिए जब कलकत्ता से जा रहा था, उसकी गिरफ्तारी के लिए रानी साहिबा ने वारन्ट निकलवा दिया उनका कहना था कि रत्नाकर सरोजिनी को भगा ले गए हैं। रत्नाकर ने इतनी शीघ्रता की थी कि वे कलकत्ता में न गिरफ्तार हो सके। लेकिन जिस वक्त वे गाड़ी बदलने के लिए मुगलसराय में उतरे पुलिस ने झट उन्हें गिरफ्तार कर लिया ! बिचारे हक्काबक्का कर रह गए !

रत्नाकर गिरफ्तार होकर पुलिस की हिरासत में भेज दिये गए और सरोजिनी कलकत्ते लौटा दी गई !

रत्नाकर ने मजिस्ट्रेट के सामने एक लम्बा चौड़ा बयान दिया। उस बयान में उन्होंने सारी बातों पर प्रकाश डाला। मजिस्ट्रेट ने देखा एक के भीतर अनेक मामले उलझते जा रहे हैं तो उन्होंने मामला जजी में भेज दिया उस दिन अदालत में जब मामले की सुनवाई आरम्भ हुई, अदालत में बड़ी भीड़ थी।

गवाहों के बयान पर बयान होने लगे। वादी-प्रतिवादी के वकील जिरह करते जा रहे थे। जज चुपचाप बयान और तर्क सुन रहे थे। सरोजिनी देवी की पुकार हुई। पर उस पुकार पर कोई बोला नहीं। दूसरी बार पुकार हुई; फिर भी कोई न बोला।